Printed and published by
K. Mittra, at The Indian Press, Ltd., Allahabad

वक्तव्य

हिंदी स्कूलों के विद्यार्थियों की अवस्था, अभिरुचि एवं मस्तिष्क-दशा पर विचार करके तथा देश, समाज और साहित्य के भावी रूप को देखते हुए उपयुक्तता एव उपयोगिता की धारणा के साथ शिक्षा-विभाग ने पाठ्य-क्रम का एक साधारण और व्यापक मान-चित्र उपस्थित करते हुए तदनुकूल पाठ्य-पुस्तकों के तैयार करने की विज्ञप्ति प्रकाशित की थी।

प्रस्तुत पुस्तक शिक्षा-विभाग के उसी मान-चित्र के आधार पर तैयार की गई है। जिन विषयों की ओर उसमें सकेत किया गया है प्रायः उन्हीं सब विषयों से संबध रखनेवाले पाठों का समावेश इस पुस्तक में हुआ है, और कोई भी आवश्यक तथा प्रधान विषय छोड़ा नहीं गया।

कक्षा की योग्यता पर पूरा ध्यान रखते हुए पाठों का सचयन एव क्रम निर्धारित किया गया है। सरल पाठों से प्रारभ करके उत्तरोत्तर उन्नत पाठ दिए गए हैं।

भाषा, विचार-धारा आदि में भी यथाक्रम उत्कृष्टता रक्खी गई है। एतदर्थ प्रायः प्रत्येक पाठ की भाषा में यथोचित परिवर्तन एव परिवर्धन किया गया है। ऐसा करते हुए लेखक की शैली, विचारावली और ऐसी ही अन्य विशेषताओं को नितांत ही अछूता रक्खा गया है और उनमें किसी प्रकार भी विकार नहीं आने दिया गया।

लेखों या कविताओं के केवल वे ही अश यहाँ दिए गए हैं जो विद्यार्थियों के लिये उपयुक्त, उपादेय और उनकी योग्यता के अनुकूल हैं। यथास्थान पाठों के आदि में भूमिका-मूलक विषय-प्रवेश

या वस्तु-परिचय के लिये संक्षिप्त प्राक्कथन दे दिया गया है, जिससे विद्यार्थियों को प्रसंगादि के समझने में सरलता और सुविधा हो सके।

उन समस्त पुस्तकों एवं पत्र-पत्रिकाओं का भी उल्लेख यथास्थान कर दिया गया है जिनसे कविताएँ या लेखांश लिए गए हैं, जिससे विद्यार्थियों में स्वतंत्र अध्ययन और पुस्तकावलोकन करने की रुचि उत्पन्न हो।

जो लेखक विशेष शैलियों के प्रवर्तक, विकाशक और प्रचारक हैं तथा जिनका हिंदी-संसार में समादर है और जो प्रतिष्ठित एवं परिचित लेखक हैं, विशेष रूप से उनके ही सुंदर, सुरुचिपूर्ण और यथेष्ट लेखांशों और काव्यांशों के संकलन करने की ओर विशेष ध्यान रक्खा गया है।

प्रत्येक पाठ के साथ पाठ-सहायक के रूप में क्लिष्ट-शब्दों, पदों एवं प्रयोगों (मुहावरों) पर यथोचित प्रकाश डाला गया है। विदेशीय शब्दों और पदों की सूक्ष्म व्याख्या भी टिप्पणियों में की गई है। विशेष शब्दों या शब्द-युग्मों की बनावट आदि की ओर भी संकेत किए गए हैं।

प्रत्येक पाठ के अंत में जो अभ्यास दिए गए हैं, उनमें हमने विशेष श्रम किया है। इस संबंध में शिक्षा-विभाग की विज्ञप्ति में दी हुई बातों का पूर्ण ध्यान रक्खा गया है और तदनुकूल ही प्रश्न बनाए गए हैं। यदि शिक्षक इन अभ्यासों के आधार पर बालकों को अध्ययन कराएँगे तो हमें पूर्ण आशा है कि उन्हें यथेष्ट योग्यता प्राप्त हो जायगी। भाषा के रूपों, उसके शब्दों, प्रयोगों आदि से पूरा परिचय हो जायगा। विचारों के प्रकट करने की शक्ति बढ़ेगी, वाक्य-विन्यास का ज्ञान होगा और निबंध-रचना की योग्यता बढ़ेगी। साहित्यावलोकन में अनुराग बढ़ेगा और स्वाध्याय में रुचि उत्पन्न होगी। जितने भी प्रकार के आवश्यक, उपयोगी और उपयुक्त प्रश्न होने चाहिए प्रायः वे सभी इस पुस्तक में मिलेंगे।

इसके अतिरिक्त शिक्षकों के लिये हमने प्रत्येक पाठ के साथ उससे संबंध रखनेवाली उन बाहरी बातों की ओर भी आवश्यक संकेत दिए हैं जिन पर प्रकाश डालना उचित है और जो विद्यार्थियों की बाह्य ज्ञान-वृद्धि के लिये आवश्यक और उपयोगी हैं।

पुस्तक के अंत में शिक्षा-विभाग की विज्ञप्ति के आधार पर प्रत्येक प्रतिनिधि-लेखक और कवि की संक्षिप्त जीवनी तथा उसकी भाषा और शैली आदि की मार्मिक विवेचना भी परिशिष्ट के रूप में दे दी गई है। पाठों के साथ न देकर अंत में हमने इसे इसलिये दिया है जिससे विद्यार्थियों का ध्यान पाठ की ओर से हट कर इस पर ही प्रथम न आ जाय। प्रथम वे पाठ का अध्ययन करें, उसकी भाषा एवं शैली आदि को स्वयं देखें और इस प्रकार पूर्ण परिचित हो जाने पर हमारी विवेचना से लाभ उठावें और फिर उन लेखकों के विषय में विशेष जानकारी प्राप्त करें। यथास्थान पाठ-वस्तु को स्पष्ट और प्रत्यक्ष-सा करने के लिये यथेष्ट सुंदर और समाकर्षक (सादे और रंगीन दोनों प्रकार के) चित्र भी लगवा दिए गए हैं, इससे पुस्तक की चारुता और भी चमक उठी है। पुस्तक की छपाई-सफाई, आकार-प्रकार आदि अन्य बाहिरी बातों पर प्रकाशक महोदय की ओर से पूरा ध्यान दिया गया है और पुस्तक अत्यंत ही रुचिर और रोचक बनाई गई है।

इस प्रकार इस पुस्तक को उपयोगी और उपयुक्त बनाने के लिये न केवल निर्धारित मान-चित्र के आधार पर सुंदर लेखों या काव्यांशों का संग्रह ही कर दिया गया है वरन् विविध प्रकार के मौलिक, उपयोगी और आवश्यक अभ्यासों, पाठ-सहायकों तथा संकेतों आदि का भी सुरुचिपूर्ण सामंजस्य किया गया है और यही इस पुस्तक की मौलिक विशेषता है। अस्तु हमें आशा है कि इस पुस्तक से छात्रों को विशेष लाभ प्राप्त होगा।

—संपादक

विषय-सूची



गङ्गावतरण

विषय-विभाग

Prose (गद्य)

I. Descriptive Pieces

(*a*) Natural Subjects—Times, etc.—

ग्रीष्म, हिमालय-दर्शन, जीवन-संग्राम और छोटे प्राणी

(*b*) Man and His Activities, etc.—

शेर का शिकार, शिकागो का रविवार, सिंधिया के भोज और त्योहार

(*c*) Travels—हरिद्वार और हृषीकेश की यात्रा

(*d*) Some Pieces on Abstract Subjects, etc.—

लक्ष्य, जापान की शिक्षा-प्रणाली, बेतार का तार, सम्भाषण मे शिष्टाचार

II. Narrative Pieces

(*a*) Historical Stories, etc.—

वाटरलू का युद्ध

(*b*) Biographical :—

सर चद्रशेखर वेंकट रमन

(*c*) Stories of Chivalry, etc.—

सच्ची मित्रता

(*d*) Imaginative Stories, etc.—

राजा भोज का सपना

III. Literary Pieces

(*a*) Short Instructive Articles—

मित्रता

(*b*) Witty Pieces, etc.—आप

(*c*) Essays—आत्म-निर्भरता

वर्तमान हिंदी-साहित्य के गुण-दोष, सत्यहरिश्चंद्र (नाटक)

(*d*) Literary Criticism and Drama—

Poetry (पद्य)

1 Narrative—रावण और अगद

2. Puranic Stories—काली-दमन

3. Descriptive—गगावतरण

4 Inspirational—कर्त्तव्योत्तेजना

5. Love of Country—मातृ-भूमि

6. Didactic—

नीति-निश्चय (रहीम-रचना, गिरिधर-गिरा, कबीर वाणी)

तुलसी-सतसई

7. Satirical—शिव-बरात

8. Devotional—सूर-सुधा



साहित्य-प्रदीप

(१) मातृभूमि

(१)

नीलांबर परिधान हरित पट पर सुन्दर है,
सूर्य्य-चन्द्र युग मुकुट, मेखला रत्नाकर है।
नदियाँ प्रेम-प्रवाह, फूल तारे मंडन हैं,
बंदीजन खग-वृन्द, शेष-फन[1] सिंहासन है।
करते अभिषेक पयोद हैं, बलिहारी इस वेष की;
हे मातृभूमि! तू सत्य ही सगुणमूर्ति सर्वेश की॥

---

१ एक महान् सर्पराज, जिन पर पुराणों के लेखानुसार पृथ्वी स्थिर है, और जो बड़े विद्वान्, बुद्धिमान् और मनीषी हैं।

(२)

जिसकी रज में लोट लोट कर बड़े हुए हैं,
घुटनों के बल सरक सरक कर खड़े हुए हैं।
परमहंस-सम बाल्य-काल मे सब-सुख पाए,
जिसके कारण "धूलभरे हीरे" कहलाए।
हम खेले कूदे हर्षयुत जिसकी प्यारी गोद मे,
हे मातृभूमि! तुझको निरख मग्न क्यों न हों मोद मे॥

(३)

हमें जीवनाधार अन्न तू ही देती है,
बदले मे कुछ नहीं किसी से तू लेती है।
श्रेष्ठ एक से एक विविध द्रव्यों के द्वारा,
पोषण करती प्रेम-भाव से सदा हमारा।
हे मातृभूमि! उपजे न जो तुझसे कृपि-अंकुर कभी,
तो तड़प तड़प कर जल मरे जठरानल में हम सभी॥

(४)

पाकर तुझसे सभी सुखों को हमने भोगा,
तेरा प्रत्युपकार कभी क्या हमसे होगा?
तेरी ही यह देह तुझी से बनी हुई है,
बस तेरे ही सुरस-सार से सनी हुई है।
फिर अंत-समय तू ही इसे अचल देख अपनायगी,
हे मातृभूमि! यह अंत में तुझमें ही मिल जायगी॥

(५)

सुरभित, सुंदर, सुखद सुमन तुझ पर खिलते हैं,
भाँति भाँति के सरस सुधोपम फल मिलते हैं।
ओषधियाँ हैं प्राप्त एक से एक निराली,
खानें शोभित कहीं धातु वर रत्नोंवाली।
जो आवश्यक होते हमें मिलते सभी पदार्थ हैं;
हे मातृभूमि! वसुधा, धरा तेरे नाम यथार्थ हैं॥

(६)

दीख रही है कहीं दूर तक शैल-श्रेणी,
कहीं घनावलि बनी हुई है तेरी वेणी।
नदियाँ पैर पखार रही हैं बन कर चेरी,
पुष्पों से तरु-राजि कर रही पूजा तेरी।
मृदु मलय-वायु मानों तुझे चंदन चारु चढ़ा रही,
हे मातृभूमि! किसका न तू सात्त्विकभाव बढ़ा रही॥

(७)

क्षमामयी, तू दयामयी है, क्षेममयी है,
सुधामयी, वात्सल्यमयी, तू प्रेममयी है।
विभवशालिनी, विश्वपालिनी, दुख हरती है,
भयनिवारिणी, शांतिकारिणी, सुखकर्त्री है।
हे शरणदायिनी देवि! तू करती सबका त्राण है,
हे मातृभूमि! संतान हम, तू जननी, तू प्राण है॥

(८)

जिस पृथ्वी मे मिले हमारे पूर्वज प्यारे,
उससे हे भगवान ! कभी हम रहें न न्यारे।
लोट लोट कर वहीं हृदय को शांत करेंगे,
उसमे मिलते समय मृत्यु से नहीं डरेंगे।
उस मातृभूमि की धूल में जब पूरे सन जायँगे,
होकर भव-बंधन-मुक्त हम आत्मरूप बन जायँगे॥

(स्वदेशसगीत से) —मैथिलीशरण गुप्त

पाठ-सहायक

परिधान—वस्त्र, मेखला—कटि-सूत्र, परमहंस—एक प्रकार के सन्यासी, जठरानल—जठर-पेट + अनल-अग्नि—उदर की अग्नि जिससे भोजन पचता है—देखो—अनल का तो अर्थ है अग्नि, नल का—एक राजा, पानी का नल, और अनिल का अर्थ है वायु, प्रत्युपकार—प्रति—उपसर्ग + उपकार—उपकार के बदले उपकार—प्रति उपसग से अन्य शब्द बनाओ यथा—प्रत्येक, प्रतिस्पर्धा आदि, वसुधा—वसु—(अष्ट वसु) सपत्ति, धन + धा—धारण करनेवाली—इसी प्रकार ध लगाकर बनाओ अन्य शब्द जैसे अवुध, वात्सल्य—वत्स—लड़का—तत्सबंधी प्रेम, अंबर—आकाश, वस्त्र।

अभ्यास

१—मातृभूमि के साथ हमारा क्या संबंध है, क्यों वह हमारी माता है?

२—क्या क्या उपकार मातृभूमि ने हमारे साथ किए हैं और करती है ?

३—हमारा उसके प्रति क्या कर्तव्य है ? यहाँ कवि अपनी क्या इच्छा प्रकट करता है ?

४—मातृभूमि का कैसा रूप यहाँ प्रथम छंद में चित्रित किया गया है ?

५—छं० नं० १ और २ का सान्वय भावार्थ लिखो।

६—विशेषण बनाओ और प्रयोग करो—

सुख, खेलना, शेष, फूल, प्रेम।

७—छं० नं० ३ की क्रियाएं चुनो और उनके रूप अन्य पुरुष सामान्य भविष्य, और पूर्णभूत में लिखो।

८—इस कविता को कंठाग्र करो और इसी प्रकार की मातृभूमि या भारत-प्रेम पर कोई दूसरी कविता सुनाओ।

९—क्या अन्तर है सोदाहरण लिखो—

अन्न—अन्य, विविध—विबुध, देह—दाह, सुमन—सुमन, समन।

१०—प्रत्यय या उपसर्ग लगाकर विविध शब्द बनाओ—

मन, भाव, शान्त, सन, रूप।

११—सविग्रह समास और अर्थ लिखो और पर्यायवाची शब्द बताओ—

भव-बंधन-मुक्त, विश्वपालिनी, सुधोपम, प्रत्युपकार, जीवनाधार।

संकेत—

१—प्रथम छंदगत रूपक को स्पष्ट करना तथा इसी प्रकार अन्य रूपक रचना और रचाना।

२—ऐसी अन्य कविताएँ सुनना-सुनाना।

---

(२) हरिद्वार और हृषीकेश की यात्रा

आजकल सर्वत्र नीरस निदाघ का प्रताप-ताप छाया है, सारा भूतल भगवान् भास्कर की ज्वाला सी मरीचिमाला से तप्त तवे के समान जल रहा है। प्रतप्त पवन तरु-लतादि को झुलसा रहा है। घर से बाहर जाना दुस्साहस करना है। पशु छाँह मे भी बैठे हाँफ रहे हैं, पक्षी चंचु खोले नीड़ों या तरु-कोटरों में छिपे बैठे प्राण-रक्षा कर रहे हैं।

कितना ही पानी पीजिए, तृषा शान्त ही नहीं होती। सारे शरीर में प्रस्वेद-प्रवाह है। ऐसे आतप-काल में कुछ आनन्द है तो शीतल आवास मे या शिमला, मंसूरी आदि पर्वतों के शान्त शीतल प्रान्त के निवास मे। श्रीमान् लोग यहाँ आतप से शान्ति प्राप्त करते हुए जल-वायु-परिवर्तन का भी लाभ उठाते हैं।

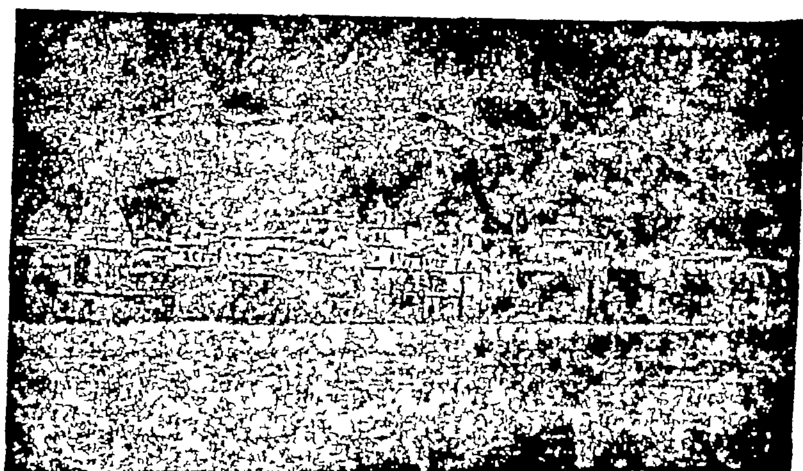
कुछ श्रीमान् "एक पन्थ दो काज" के सार को विचार कर मंसूरी और नैनीताल न जाकर हरिद्वार आते और लौकिक-पारलौकिक दोनो आनन्द प्राप्त करते हैं। जिन सज्जनों ने एक वार भी इस परमानंददायक तीर्थराज में आने का सौभाग्य प्राप्त किया है वे, हमें पूरा विश्वास है, यह कहने में कदापि संकोच न करेंगे कि यह स्थान अपने गुणों—

स्वास्थ्य-वर्द्धन और आह्लादकरत्व—में अपनी समता नहीं रखता है। इस स्थान की मनोमोहिनी शक्ति वर्णन के बाहर है।

हम १२ जून को लखनऊ से पंजाब मेल के द्वारा चले। मार्ग में एक ही विशेष घटना घटी, अवध-रुहेलखंड रेल पर हरिद्वार के समीप लुकसर नामक एक स्टेशन है। हम सब देहरा-इलाहाबादवाली गाड़ी मे निश्चिंत बैठ वार्तालाप कर रहे थे कि एक बाबू साहब अपने बाल-बच्चो के साथ उसी डिब्बे में आ विराजे। गाड़ी तेज़ होकर कुछ ही आगे गई होगी कि बाबू साहब के छोटे बच्चे ने उनका मनीबेग, जिसके अन्दर लगभग ७७०) के नोट और कुछ रुपये-पैसे थे, गाड़ी से बाहर गिरा दिया। बाबू साहब अरे! बेग! कह कर उछल पड़े, गोद से बच्चा गिर गया। हमारे एक मित्र ने तुरंत गाड़ी खड़ी करने की जंज़ीर खींची, गाड़ी खड़ी हो गई। हम लोग उतरे तो देखते क्या हैं कि एक आदमी, चलती हुई गाड़ी से कूद, बेग उठा वेग से भागा जा रहा है। हम लोग पीछे दौड़े और लगभग आधे मील पर उसे पकड़ सके। बेग मिल गया और मामला ज्यों-त्यों ठंढा हुआ। गाड़ी फिर चल दी और हम लोग सकुशल प्रातःकाल ता० १३ को हरिद्वार जा पहुँचे।

गत वर्ष की अपेक्षा इस साल हरिद्वार मे बहुत कम मेला हुआ। भयंकर दुर्भिक्ष और उससे उत्पन्न घोर दुःख ही इस न्यूनता के कारण हो सकते हैं। यहाँ पर अनेक देव-मंदिर

और धर्मशालाएं हैं, इससे किसी यात्री को रहने में दुःख के होने की संभावना नहीं है। हम पार्वत्य दृश्य और गंगा सौंदर्य का वर्णन आगे करेंगे। यहाँ मायादेवी, बड़ा महारानी, बिल्वकेश्वर महादेव, सूर्य्यकुंड और कनखल में दक्ष प्रजापति का मंदिर दर्शनीय है।



हरिद्वार की गङ्गा

प्रायः दो वर्ष हुए हरिद्वार और ज्वालापुर स्टेशन के मध्य में ऋषिकुल ब्रह्मचर्याश्रम की स्थापना की गई थी। ईश्वर की कृपा से वह अब तक जीवित है। हम उसकी दीर्घायु के लिए भगवान से प्रार्थना करते हैं। सहानुभूति की न्यूनता और मनोमालिन्य के हो जाने से अपने यहाँ की अनेक संस्थाएं बिगड़ चुकी हैं। उसी वैमनस्य के बीज को, सुना जाता है, किसी 'महात्मा' ने इस पुण्यस्थली में भी डालने का साहस किया है। यह आश्रम सब

प्रकार से पोषणीय है। हमें आशा है कि प्रत्येक हिंदू कुछ न कुछ देकर इस पवित्र ऋषिकुल की सहायता करेगा। इस आश्रम के अधिकारियों से हमारा निवेदन है कि वे वैमनस्य को हटाकर इसका प्रबंध एक सुशिक्षित तथा सुयोग्य सभा को दे दें और यों इसे चिरस्थायी तथा उपयोगी बना दें।

१५ जून को प्रातःकाल हमारी हृषीकेश के लिये तैयारी हुई। बैलगाड़ी के सिवा वहाँ तक और कोई भी सवारी नहीं जाती। मार्ग में दो-एक स्थानों में पहाड़ पर चढ़ना-उतरना पड़ता है। यहाँ के लोग कोसों को 'मील' कहते हैं। पहले सुनते थे कि हरिद्वार से हृषीकेश १० 'मील' है। हमने सोचा था कि अपने हिसाब से केवल ५ ही कोस चलना होगा, परंतु उसके स्थान में हमें १० कोस का मार्ग नापना पड़ा। रास्ते के पथरीले होने के कारण बैलगाड़ी को बहुत हिलना और 'लड़-खड़ाना' पड़ता है। हृषीकेश-यात्रा में गाड़ी के आंदोलित होने के कारण घोररूप से उदर-मंथन हो जाता है।

लौटते समय एक अति स्थूलांग सेठ जी का साथ हुआ। जिस समय पत्थरों के ऊपर चढ़कर गाड़ी खट से नीचे गिरती थी, बेचारे सेठ जी अधमरे-से हो जाते थे। रास्ते में आधी दूर पर सत्यनारायण जी का मंदिर पड़ता है। हृषीकेश में भरत जी के दर्शन और गंगा-स्नान का माहात्म्य मुख्य है। यहाँ पर बाबा काली कमलीवाले की धर्मशाला में यात्रियों को बड़ा सुख मिलता है। इसके कर्मचारी योग्य और नम्र हैं।

हम १६ जून को प्रातःकाल हृषीकेश से आगे बढ़े। यहाँ सवारी नहीं जाती और अपने पैरों ही से काम लेना पड़ता है। उक्त स्थान से प्रायः पौने दो कोस पर लक्ष्मणझूला है। रास्ते में पहले पहल कैलास-विद्या-मंदिर, तदनंतर शत्रुघ्न जी का देवालय, फिर ब्रह्मलीन स्वामी रामतीर्थ जी एम० ए० का स्मारकरूप 'श्रीरामाश्रम' और लक्ष्मण जी की विशाल मूर्ति यात्रियों को अवश्य देखनी चाहिए। यहाँ पहाड़ और गंगा जी के सुंदर दृश्य अकथनीय हैं।

लक्ष्मणझूला एक अत्यंत रमणीय स्थान है। इस स्थान में गंगा जी का पुल नीचे से कोठियों पर नहीं, वरन् ऊपर सिंगदार लोहे के पुष्ट रस्सों पर अवलम्बित है। बीच पुल पर पहुँचते ही वह बड़ा निराधार हिंडोला झूलने लगता है। लक्ष्मणझूला तथा हृषीकेश के आनंद का अनुभव करके १६ तारीख़ की रात्रि में हम सब हरिद्वार वापस आए, अब १९ की रात्रि में मकान के लिये प्रस्थान करने का विचार हुआ।

उक्त तीनों स्थानों के वर्णन के बाद श्री गंगा जी की अलौकिक छटा का निरूपण करना अत्यंत आवश्यक है। हरिद्वार से आगे जितना ही पूर्व को बढ़िए उतना ही गंगा जी के साथ अनेक प्रकार के अन्यायों के होने के कारण इस पतित-पावनी नदी की दशा दूषित होती गई है। हरिद्वार में भागीरथी के वेग और बल को देखकर कोई भी नहीं अनुमान कर सकता है कि प्रयाग आदि स्थानों में यह अत्यंत दुर्बल और मंद हो जायगा। यहाँ

पर यौवन से भरी हुई कोमलांगी परंतु प्रबल और सुंदरी, परंतु विशाल मूर्तिमती गंगा देख पड़ती है।

अपनी रमणीयता और सरसता से तट-वासियों को निरंतर मोहित करना इसका मत्र है। इसके ऊपर हृषीकेश और लक्ष्मणझूला मे आप गंगा-बालिका को झूलते हुए-सा पाइएगा। यहाँ यह हठीली लड़की के सदृश कहीं हँसती, कही खेलती, कहीं चिल्लाती और कहीं पर गाती हुई दृष्टिगोचर होती है। उस स्थान पर इस विशाल तेजस्विनी बालिका का रूप अद्भुत ही है। वहाँ पर इसे अपने मित्र पर्वत और वन की गोद में तथा अपने पथरीले झूले पर खिलखिला कर दौड़ते हुए देखकर देखनेवाले के चित्त में असीम आनंद होता है।

लक्ष्मणझूला के समीप वन्य और पार्वत्य दृश्य तो गंगा जी की और स्वयं भागीरथी भी उनकी शोभा बढ़ाती हैं। यहीं पर गंगा का अदूषित रूप, अप्रतिहत तेज और चढ़ती हुई यौवनावस्था का बल दिखाई देता है। जिन्हें गंगा जी की स्वाभाविक मधुरता, शीलता और सुस्वादुता का आनंद चखना हो उन्हें उक्त स्थान अवश्य देखने चाहिएँ। इसमे संदेह नहीं कि यहाँ वे भागीरथी के अनुपम सौंदर्य्य, अलौकिक प्रकाश, अतुलनीय लावण्य, अप्रतिम रूप, अपरिमेय तेज और अकथनीय प्रभाव से अवश्य मोहित होकर यहाँ के आनंद और सुख को सदा स्मरण रक्खेंगे।

—सोमेश्वरदत्त शुक्ल, बी० ए०

पाठ-सहायक

आच्छादित—ढके हुए, निर्दिष्ट—निश्चित, मनोमालिन्य—(मनस् + मालिन्य) मन को मलीनता, चिरस्थायी—दीर्घ काल तक रहनेवाली, आन्दोलित—हिलती हुई कोठिया—बड़े बड़े खम्भों, अप्रतिहत—अरोक, श्लाघनीय – प्रशसनीय।

अभ्यास

१—इस यात्रा को परिवर्धित करके फिर से लिखो।

२—गङ्गा जी का कहाँ कैसा रूप चित्रित किया है ?

३—भावार्थ लिखकर वाक्यों में प्रयोग करो— मार्ग नापना, हवा होना, अधमरे होना दाँव लगाना, घर उजाड़ होना, पैरों से काम लेना, ठढी साँस लेना।

४—किस विशेष अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं, इन्हें भिन्न भिन्न अर्थों में प्रयुक्त करो—

ढीला करना बाल, ठंढी, महात्मा, मंत्र।

५—किस प्रकार के शब्द हैं और कैसे बने हैं—ऐसे ही और शब्द बना कर प्रयोग करो—पथरीले, वन्य, पार्वत्य, हठीली, पोषणीय।

६—इस पाठ से जोड़ेवाले शब्द चुनो और उन्हीं के समान अन्य शब्द बनाओ तथा प्रयुक्त करो।

७—प्रथम अनुच्छेद की क्रियाएँ चुनो और उनकी पद-व्याख्या कर उनको प्रेरणार्थक तथा विधि क्रियाओं के रूपों में परिवर्तित करो।

८—सविग्रह समास लिखो—

सूर्यनारायण मनोमोहिनी अनेकानेक, शुभाशीर्वाद, चिरस्थायी।

९—नैनीताल, मसूरी क्या है, कहाँ है और क्यों प्रसिद्ध हैं ?

संकेत—

हरिद्वार जाने का मार्ग दिखाना और गङ्गा की धारा का विशेष हाल बताना।

---

(३) सिंधिया के भोज और त्यौहार

भारतवर्ष में वीरता के नाते सिक्ख, राजपूत और मरहठा जाति के नाम अति प्रसिद्ध हैं। इन तीनों और विशेषरूप से मरहठो ने मुसलमानो से अनेक बार रामांचकारी युद्ध किए और अंत में उनकी स्थापित राज्य-श्री को समूल नष्ट ही कर दिया। तदनंतर सिक्खों और मरहठों को अँगरेज़ो से भी युद्ध करने के अवसर प्राप्त हुए और जिस वीरता का परिचय उन्होने दिया उसकी भूरि भूरि प्रशंसा स्वयं निष्पक्ष गुण-ग्राहक विदेशियों ने की है। यहाँ उन्हीं मरहठो के सामाजिक जीवन, भोज, त्यौहार एवं शिष्टाचारादि का साधारण चित्रण किया जाता है।

दौलतराव सिंधिया भारतवर्ष के इतिहास मे एक प्रसिद्ध व्यक्ति हो चुके हैं, अतः उनके विषय मे, प्रस्तुत प्रसंग में, विशेष लिखने की कोई आवश्यकता नहीं। उन्होंने अँगरेज़ों से युद्ध किए और परस्पर संधि हो जाने पर एक अँगरेज़ी रेज़ीडेंट उनके साथ रहने लगा, जिसके साथ की अँगरेज़ी सेना का अध्यक्ष ई० स० १८०९ से कप्तान ब्राटन था। इसने सिंधिया महाराज के साथ रहते हुए अपने भाई को, जो इँगलैंड में था, ३२ पत्र लिखे थे। पहला पत्र २६ दिसंबर सन् १८०८ को और अंतिम २७ फ़रवरी सन् १८०९ को लिखा था। इसके पत्रों से मरहठों के अन्य व्यवस्था-विधा-

नादि की बातो के साथ ही मरहठों के भोज-त्यौहार एवं शिष्टाचार आदि का भी पर्याप्त परिचय प्राप्त होता है।

रेज़ीडेंट साहब की तरफ़ से महाराज के साथ एक सेवक अथवा दूत रहता था जो ख़बरदार कहलाता था। ऐसे ही महाराज की ओर से भी एक ख़बरदार रेज़ीडेंट के यहाँ भी रहा करता था।

समय समय पर रेज़ीडेंट साहब सिंधिया महाराज से मिला करते थे। जनवरी सन् १८०९ का ज़िक्र है कि रेज़ीडेंट साहब महाराज से छावनी में मुलाकात करने आए। महाराज की आयु उस समय ३० वर्ष की थी। वे एक तंबू में, जो बहुत अच्छा सजा हुआ था, ज़री की गद्दी पर बैठे हुए थे। उनकी पीठ के सहारे के लिये गोल मोटा तकिया था और हाथों के सहारे के लिये गोल चपटी गद्दियाँ थीं। महाराज बहुत सादे वस्त्र पहने हुए थे। उनके शरीर पर एक पीला रेशमी चोगा था जो अलक-लीक कहलाता था और कंधों पर दुशाला था। गले में बहुमूल्य हारों, पन्नों और मोतियों की लड़ियाँ थीं। इन महाराज के पास क़ीमती मोती बहुत थे, यहाँ तक कि इनका नाम ही मोतीवाला पड़ चुका था। गद्दी के दाएँ बाएँ सरदार लोग विद्यमान थे।

महाराज स्वयं बार बार न बोलते थे। कुछ बड़े सरदार, जो समीप में बैठे थे, उनसे निवेदन कर देते और महाराज की आज्ञा प्राप्त कर लेते थे, रेज़ीडेंट को बैठने का स्थान महाराज की बाईं ओर मिला और सामने ही पंडित आत्माराम, जो महाराज की

तरफ़ से रेज़ीडेंट के यहाँ रहते थे, बैठे। चलते समय इतर और पान दिए गए और गोपालराव, जो पहले रेज़ीडेंट साहब के स्वागत के लिये द्वार पर आए थे, उन्हें वहाँ वापस पहुँचाकर लौट आए।

जब महाराज किसी से मिलने जाया करते तो अपनी मसनद (गद्दी) वहाँ पहले ही से भेज दिया करते थे और वहाँ पर प्रायः सब बातें वैसी ही होतीं जैसे अपने दर्बार में हुआ करती थीं। हाँ, पान व इतर देने का काम उस निमंत्रक का होता था। विशेष अवसरों पर ख़िलअत दी जाती थी। एक बार रेज़ीडेंट साहब को महाराज की ओर से एक प्रीति-भोज दिया गया। सायंकाल का समय था, डेरों में मेवों-मिष्टान्नों व पक्वान्नों आदि का अच्छा ठाट-बाट लगाया गया था। महाराज की तरफ़ से एक थैली, जिसमें एक हज़ार रुपए थे, भेंट की गई और रेज़ीडेंट साहब ने उस सरदार को, जो थैली लाया था, ख़िलअत दी। फिर रेज़ीडेंट ने गवर्नर-जनरल की ओर से चार सुंदर अरबी घोड़ों के सहित एक सुंदर बग्घी, जिसमें सोने का काम हो रहा था, महाराज को भेंट की।

महाराज की ओर से सब त्यौहार यथाविधि मनाए जाते थे। संक्रांति के अवसर पर महाराज ने मुख्य मुख्य सरदारों तथा रेज़ीडेंट को तिल भेंट किए। उसी अवसर पर छावनी के एक धनाढ्य वैश्य ने बहुत-से ब्राह्मणों को भोजन का निमंत्रण दिया और खान-पान का प्रशंसनीय प्रबंध किया। जिमाने के पश्चात् प्रत्येक को एक धोती, कंबल और रुई की सदरी भेंट

की। तदनंतर वसंतमहोत्सव पर परस्पर पुष्प भेंट किए, जो बसंती रंग की पगड़ियों में लगाए गए। छावनी में स्थान स्थान पर नाच-गान हुआ।

मुसलमानों के मोहर्रम के अवसर पर महाराज दौलतराव ने दरबार के समय हरे वस्त्र पहने और वे छावनी के ताज़ियों को, जिनकी संख्या सौ से अधिक थी, देखने भी गए। गाड़े जाने के पूर्व रात्रि को सब ताज़िए जुलूस के साथ महाराज के तंबू के सामने लाए गए और महारानी ने भी चिक में से होकर डंडे तथा पटेबाज़ी आदि को देखा। ब्राटन साहब भी हिंदुस्तानी पोशाक पहन कर रेज़ीडेंट के मुसलमान सेवकों के बनाए हुए ताज़िए के साथ साथ हाथी पर चढ़कर जुलूस के साथ आए, स्थान स्थान पर शर्बत का प्रबंध था।

होली के अवसर पर प्रचलित प्रथानुसार रेज़ीडेंट साहब सिंधिया महाराज के दर्शन करने आए। महाराज ने चाँदी के गुलाबदान से उन पर गुलाब-जल छिड़का। उपस्थित मंडली में खूब अबीर और गुलाल-गोटे फेंके गए। महाराज के पास एक दमकला था जिससे वे इतने वेग से जल फेंकते थे कि मनुष्य का समीप बैठा रहना कठिन हो जाता था। थोड़ी ही देर में वहाँ का सारा भूतल गुलाबी-नारंगी रंग के कीचड़ से आवृत हो गया। होली पर नर्तकियों के नृत्य के अतिरिक्त कथकों का नाच भी सारी रात होता था और सिपाही उससे इतने मुग्ध हो जाते

थे कि गानेवाले एक ही पलटन से पाँच-पाँच सौ रुपये एकत्र कर ले जाते थे।

जन्माष्टमी के महोत्सव के लिये विशेषरूप से एक विस्तीर्ण तंबू ताना गया और फूल-डोल, मंडप आदि बनाए गए। इस काम के लिये आवश्यक वस्तुएं छावनी के बाज़ार से मोल ली जातीं और उत्सव की समाप्ति पर फिर वैश्या को बेच दी जाती थीं। उस अवसर पर ब्राह्मणों को एक सहस्र रुपया दान दिया गया। सायंकाल को मथुरा से आए हुए प्रवीण रासधारियों का ब्रज-भाषा में मनोहर रास हुआ। मथुरा में उस समय ये लोग बहुत थे और वहाँ से दूर दूर अभिनय-प्रदर्शनार्थ जाया करते थे।

दशहरे के त्योहार पर एक दिन पूर्व ही घोड़ों को स्नान, मालिश आदि के द्वारा तैयार और अस्त्र-शस्त्रों को साफ़ किया गया। प्रातःकाल कवायद हुई। महाराज क़रीब तीन बजे पधारे। इनके पहले हाथियों पर झंडे निकाले गए। सरदार और अफसर आदि जुलूस के साथ थे। पंडितों ने एक वृक्ष की टहनी की—जो एक स्थल पर लगाई गई थी—दूध, चावल आदि से पूजा की। तदनंतर महाराज ने उसमें से एक भाग अपनी तलवार से तोड़ा और तोड़ते ही कई नीलकंठ छोड़ दिए गए, जिन्हें उड़ते हुए देख बाजों का बजना तथा बंदूकों का चलना आरम्भ हुआ और सब लोग एक खेत की ओर दौड़े और वहाँ से बालें ले आए। सलामी के पश्चात् महाराज सजे हुए हाथी पर सवार हो अपने निवास-स्थान को पधारे। मार्ग में स्थान स्थान

पर आतिशबाज़ियाँ चलाई गईं, प्रथानुसार सरदारों ने नज़रें दिखलाईं और निछावर की तथा महाराज ने खिलअत बाँटा।

प्रतिष्ठित त्यौहारों का संक्षिप्त वर्णन हम ऊपर लिख चुके। वस्तुतः सबके सब ही त्योहार छावनी में यथोचित रूप से मनाए जाते थे, यहाँ तक कि जेठ का दशहरा, तुलसी का विवाह, गणेश-चौथ आदि पर्व-तिथियों का मानना भी न भुलाया जाता था।

सैन्य-निवासों में त्यौहारों के अतिरिक्त उल्लास, विनोद और प्रमोद उत्पन्न करने का साधन कुश्तियाँ थीं। शिविरों के साथ साथ अखाड़े भी होते थे। जो कुश्ती में चतुर होता वह खलीफा बनाया जाता और सीखनेवाले पट्ठे कहलाते थे। दंड और बैठक के अतिरिक्त मुद्गर और लेजम के खेल होते थे। जिसका शरीर अच्छा होता और जिसे कुश्ती के दाव-पेंच आ जाते वह पहलवान कहलाता था।

महाराज दौलतराव को कुश्ती का बहुत शौक था। वे एक पहलवान को एक भेड़ और दस सेर दूध प्रतिदिन दिया करते थे। एक बार मथुरा से एक पहलवान छावनी में महाराज के पहलवान से लड़ने के लिये आया। दोनों की बहुत अच्छी कुश्ती हुई परंतु सरकारी पहलवान ने आगंतुक को पछाड़ दिया जिससे प्रसन्न हो महाराज ने विजेता को ५००) रुपये पुरस्कार में दिए। उस समय भारतवर्ष में बड़े बड़े आदमियों को पहलवान रखने का बहुत चाव था। वे पहलवानों का

इतना सत्कार करते थे कि उन्हें अपने हाथी-घोड़ों पर भी चढ़ने देते।

पुरुष ही नहीं किंतु स्त्रियाँ भी कुश्तियाँ लड़ती और भिन्न भिन्न नगरों में पहलवानों का कुश्ती के लिये आह्वान करती थीं। बहुत-सी तो इस विषय मे इतनी निपुण हो जाया करती थीं कि पुरुषों के लिये उन्हें पराजित कर देना कठिन काम होता था और इसलिये गौरवारूढ़ मल्ल उनसे भिड़ने में आना-कानी किया करते थे। उन दिनों मे स्त्रियाँ तलवार के प्रयोग सीखने मे भी संकोच न किया करती थीं। बाज़ीगरों की एक जाति भानमती कहलाती है। उस जाति के कुछ लोग एक बार मरहठा-शिविर में आए, और उनमें से एक स्त्री ने तलवार के आश्चर्य-जनक खेल दिखलाए।

— सकलित

पाठ-सहायक

रोमांचकारी— ऐसे भयानक कि जिन्हें देखकर रोएँ खड़े हो जायँ। रेजीडेंट—सरकारी राज-दूत जो देशी रियासतों मे रहता है और नरेशों को बाहरी कार्यों में सहायता देता है। आह्वान—बुलाना, खिलअत—राजा की ओर से दी जानेवाली भेंट, पक्वान्न—पक्क—पका हुआ + अन्न—घी से बनाए हुए खाने के स्वादिष्ठ पदार्थ—इसका अपभ्रंश है—पकवान।

अभ्यास

१—सिंधिया महाराज के यहां त्यौहार किस प्रकार मनाए जाते थे ?

२—इसी प्रकार तुम भी एक निबंध में त्यौहारों के मनाने के ढंग दिखलाओ और बताओ क्या अंतर हो गया है ?

३—यहाँ जिन दो भोजों का—एक राजसी और दूसरा एक धनिक व्यक्ति का—वर्णन किया गया है उसे एक पत्र के रूप में लिखो, मानो उनमें तुम भी थे।

४—सिंधिया महाराज का दरबार कैसा लगता था और रेज़ीडेंट का वहाँ किस प्रकार व्यवहार रहता था?

५—एक छोटे से निबंध में तुम भी किसी भोज का वर्णन करो।

६—सिंधिया महाराज के यहाँ शिष्टाचार का क्या रूप था?

७—विशेषताएँ प्रकट करो और प्रयुक्त कर भावार्थ लिखो—

आनाकानी, दाँव-पेंच, निछावर करना, खान-पान, ठाट बाट।

८—क्या अन्तर है सोदाहरण लिखो—

आनाकानी, आना-कानी, खान-पान, खाना-पीना, ठाट-बाट, ठाट बाट।

९—स्त्रियों के विषय में यहाँ क्या कहा गया है?

१०—संज्ञाएँ बनाकर प्रयुक्त करो—

खेलना, कहना रहना, लगाना।

११—प्रथम अनुच्छेद से अव्यय चुनो और उनकी व्याख्या करो।

संकेत—

१—अपने यहाँ के त्यौहारों का विशेष परिचय देना।

२—अपने यहाँ के शिष्टाचार एवं भोज-संबंधी मुख्य मुख्य नियमों का बताना।

(४ राजा भोज का सपना

राजा उसे देखते ही काँप उठा और लड़खड़ाती-सी ज़बान से बोला कि हे महाराज! आप कौन हैं, और मेरे पास किस प्रयोजन से आए हैं। उस दैवी पुरुष ने बादल की गरज के समान गंभीर उत्तर दिया कि मैं सत्य हूँ, मैं अंधों की आँखें खोलता हूँ; मैं उनके आगे से धोखे की टट्टी हटाता हूँ, मैं मृग-तृष्णा के भटके हुओं का भ्रम मिटाता हूँ और सपने के भूले हुओं को नींद से जगाता हूँ। हे भोज[१]! यदि कुछ हिम्मत रखता है तो आ हमारे तेज के प्रभाव से मनुष्यों के मन के मन्दिरों का भेद ले। इस समय तो हम तेरे ही मन को जाँच रहे हैं।

राजा के जी पर एक अजब दहशत-सी छा गई, नीची निगाह करके गर्दन खुजाने लगा। सत्य बोला—भोज! तू डरता है? तुझे अपने मन का हाल जानने में भी भय लगता है। भोज ने कहा कि नहीं इस बात से तो नहीं डरता क्योंकि जिसने अपने तईं नहीं जाना उसने फिर जाना ही क्या। सिवाय इसके मैं तो आप ही चाहता हूँ कि कोई मेरे मन की थाह लेवे और अच्छी तरह से जाँचे। मारे व्रत और उपवासों के मैंने अपना फूल-सा शरीर काँटा बनाया, ब्राह्मणों को दान-दक्षिणा देते देते सारा खजाना खाली कर डाला, कोई तीर्थ बाकी न

[१]धार नगर के विद्वान्, उदार, धर्मात्मा और पराक्रमी राजा थे, इनके विषय में बहुत-सी कथाएँ "भोजप्रबंध" आदि पुस्तकों में हैं।

रक्खा, कोई नदी या तालाब नहाने से न छोड़ा। ऐसा कोई आदमी नहीं है जिसकी निगाह में मैं पवित्र पुण्यात्मा न ठहरूँ।

सत्य बोला, ठीक, पर भोज! यह तो बतला कि तू ईश्वर की निगाह में क्या है। हवा में बिना धूप त्रसरेणु कभी दिखलाई देते हैं? पर सूरज की किरण पड़ते ही कैसे अनगिनत चमकने लग जाते हैं। क्या कपड़े के छाने हुए मैले पानी में किसी को कीड़े मालूम पड़ते हैं पर जब खुर्दबीन[१] शीशे को लगाकर देखो तो एक एक बूँद में हज़ारों जीव सूझने लग जाते हैं। बस जो तू उस बात को जानने से, जिसे अवश्य जानना चाहिए, डरता नहीं तो आ, मेरे साथ आ, मैं तेरी आँखें खोलूँगा।

निदान सत्य यह कहके राजा को मंदिर के उस बड़े ऊँचे दरवाज़े पर चढ़ा ले गया कि जहाँ से सारा बाग़ दिखलाई देता था और फिर वह उससे यों कहने लगा कि भोज! मैं अभी तेरे पाप-कर्मों की कुछ भी चर्चा नहीं करता क्योंकि तूने अपने तईं निरा निष्पाप समझ रक्खा है। पर यह तो बतला कि तूने पुण्य-कर्म कौन-कौन-से किए हैं जिनसे सर्वशक्तिमान जगदीश्वर संतुष्ट होगा।

राजा यह सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ। यह तो मानो उसके मन की बात थी। पुण्य कर्म के नाम ने उसके चित्त को कमल-सा खिला दिया, उसे निश्चय था कि पाप तो मैंने चाहे किया हो

१—(फ़ारसी) सूक्ष्मवीक्षण यन्त्र।

चाहे न किया हो पर पुण्य मैंने इतना किया है कि भारी से भारी पाप भी उसके पासंग में न ठहरेगा।

राजा को वहाँ उस समय सपने में तीन पेड़ बड़े ऊँचे ऊँचे अपनी आँखों के सामने दिखाई दिए। फलों से लदे हुए कि मारे बोझ के उनकी टहनियाँ धरती तक झुक गई थीं। राजा उन्हें देखते ही हरा हो गया और बोला कि सत्य! यह ईश्वर की भक्ति और जीवों की दया अर्थात् ईश्वर और मनुष्य दोनों की प्रीति के पेड़ हैं, देखो फलों के बोझ से धरती पर नए जाते हैं। ये तीनों मेरे ही लगाए हैं।

पहले में तो वे सब लाल लाल फल मेरे दान से लगे हैं और दूसरे में वे पीले पीले मेरे न्याय से और तीसरे में ये सब फल मेरे तप का प्रभाव दिखलाते हैं। मानों उस समय चारों ओर से यह ध्वनि राजा के कान में चली आती थी कि धन्य हो महाराज! धन्य हो! आज तुम-सा पुण्यात्मा दूसरा कोई नहीं, साक्षात् धर्म के अवतार हो, इस लोक में भी तुमने बड़ा पद पाया है और उस लोक में भी तुम्हें इससे अधिक मिलेगा। तुम मनुष्य और ईश्वर दोनों की आँखों में निर्दोष-निष्पाप हो, सूर्य के मंडल में लोग कलंक बतलाते हैं पर तुम पर एक छींटा भी नहीं लगाते।

सत्य बोला कि भोज! मैं इन पेड़ों के पास से आया था जिन्हें तू ईश्वर की भक्ति और जीवों की दया के बतलाता है तब तो उनमें फल-फूल कुछ भी नहीं था, निरे ठूँठ से खड़े थे। यह लाल,

पोले और सफ़ेद फल कहाँ से आ गए। ये सच-मुच इन पेड़ों में फल लगे हैं, या तुझे फुसलाने और ख़ुश करने को किसी ने उनकी टहनियों से लटका दिए हैं। चल उन पेड़ों के पास चल कर देखें तो सही।

मेरी समझ में तो ये लाल लाल फल, जिन्हे तू अपने दान के प्रभाव से लगे बतलाता है, यश और कीर्ति फैलाने की चाह अर्थात् प्रशंसा पाने की इच्छा ने इस पेड़ मे लगाए हैं। निदान ज्यों ही सत्य ने उस पेड के छूने को हाथ वढ़ाया, राजा सपने मे क्या देखता है कि वे सारे फल जैसे आसमान से तारे गिरते हैं एक आन की आन मे धरती पर गिर पड़े। धरती सारी लाल होगई। पेड़ों पर सिवाय पत्तो के और कुछ न रहा।

सत्य ने कहा, राजा! जैसे कोई किसी चीज़ को मोम से चिपकाता है उसी तरह तूने अपने भुलाने को प्रशंसा पाने की इच्छा से ये फल इस पेड़ पर लगा लिए थे।

सत्य के तेज से वह मोम गल गया, पेड़ ठूँठ का ठूँठ रह गया, जो कुछ तूने दिया और किया सब दुनिया के दिखलाने और मनुष्यों से प्रशंसा पाने के लिये, केवल ईश्वर की भक्ति और जीवों की दया से तो कुछ भी नहीं दिया। यदि कुछ दिया हो या किया हो तो तू ही क्यों नहीं बतलाता। मूर्ख! इसी के भरोसे पर तू फूला हुआ स्वर्ग में जाने को तैयार हुआ था।

भोज ने एक ठंढी साँस ली, उसने तो औरों का भूला समझा था पर वह सबसे अधिक भूला हुआ निकला। सत्य ने उस पेड़

की तरफ़ हाथ बढ़ाया जो सोने की तरह चमकते पोले पोले फलों से लदा हुआ था। सत्य का हाथ पास पहुँचते ही इसका भी वही हाल हो गया जो पहले का हुआ था। सत्य बोला कि राजा! पेड़ मे ये फल तूने अपने भुलाने को स्वार्थ सिद्ध करने की इच्छा से लगा लिए थे। कहनेवाले ने ठीक कहा है कि मनुष्य मनुष्य के कर्म्मों से उसके मन की भावना का विचार करता है और ईश्वर मनुष्य के मन की भावना के अनुसार उसके कर्म्मों का हिसाब लेता है।

तू अच्छी तरह जानता है कि यही न्याय तेरे राज्य की जड़ है, जो न्याय न करे तो फिर यह राज्य तेरे हाथ में क्यो कर रह सके। जिस राज्य मे न्याय नहीं वह तो बेनींव का घर है बुढ़िया के दाँतों की तरह हिलता है, अब गिरा अब गिरा। मूर्ख तू ही क्यों नहीं बतलाता कि यह तेरा न्याय स्वार्थ सिद्ध करने और सांसारिक सुख पाने की इच्छा से है अथवा ईश्वर की भक्ति और जीवो की दया से।

भोज की पेशानी पर पसीना हो आया, आँखें नीची कर लीं, जवाब कुछ न बन पड़ा। तीसरे पेड़ की पारी आई। सत्य का हाथ लगते ही उसकी भी वही हालत हुई। राजा अत्यंत लज्जित हुआ। सत्य ने कहा कि मूर्ख! यह तेरे तप के फल कदापि नहीं, इनको तो इस पेड़ पर तेरे अहंकार ने लगा रक्खा था। वह कौन-सा व्रत या तीर्थ-यात्रा है जो तूने निरहंकार केवल ईश्वर की भक्ति और जीवों की दया से किया हो। तूने यह तप

इसी वास्ते किया कि जिसमे अपने तईं औरों से अच्छा और बढ़के विचारे। ऐसे ही तप पर गोवरगनेश ! तू स्वर्ग मिलने की उम्मेद रखता है पर यह तो बतला कि मंदिर की उन मुँडेरों पर वे जानवर-से क्या दिखलाई देते हैं। कैसे सुंदर और प्यारे मालूम होते हैं, पर तो उनके पन्ने के हैं और गर्दन फ़ीरोज़े की, दुम मे मारे किस्म के जवाहिर जड़ दिए हैं।

राजा के जी मे घमंड की चिड़िया ने फिर फुरफुरी ली, मानों बुझते हुए दिये की तरह जगमगा उठा। जल्दी से जवाब दिया कि सत्य यह जो कुछ तू मंदिर की मुँडेरों पर देखता है मेरे संध्या-वंदन का प्रभाव है। मैंने जो रातों जाग जाग कर और माथा रगड़ते रगड़ते इस मन्दिर की देहली को घिसा कर ईश्वर की स्तुति-वंदना और विनती-प्रार्थना की है यहो अब चिड़ियों की तरह पंख फैला कर आकाश को जाती हैं, मानों ईश्वर के सामने पहुँच कर अब मुझे स्वर्ग का राजा बनाती हैं।

सत्य ने कहा कि राजा ! दीनबंधु करुणासागर श्रीजगन्नाथ जगदीश्वर अपने भक्तों की विनती सदा सुनता रहता है और जो मनुष्य शुद्ध हृदय और निष्कपट होकर नम्रता और श्रद्धा के साथ अपने दुष्कर्म्मों का पश्चात्ताप अथवा उनके क्षमा होने का टुक भी निवेदन करता है वह उसका निवेदन उसी दम सूर्य-चाँद को वेध कर पार हो जाता है। फिर क्या कारण कि यह सब अब तक मंदिर की मुँडेर हो पर बैठे रहे। आ चल, देखें तो सही हम लोगों के पास जाने पर आकाश को उड़ जाते हैं

था उसी जगह पर परकटे कबूतरों की तरह फड़फड़ाया करते हैं।

भोज डरा लेकिन सत्य का साथ न छोड़ा। जब मुँडेर पर पहुँचा तो क्या देखता है कि वे सारे जानवर, जो दूर से ऐसे दिखलाई देते थे, मरे हुए पड़े हैं, पंख नुचे-खुचे और बहुतेरे बिलकुल सड़े हुए, यहाँ तक कि मारे बदबू के राजा का सिर भिन्ना उठा। दो एक ने, जिनमें कुछ दम बाकी था, जो उड़ने का इरादा भी किया तो उनका पंख पारे की तरह भारी हो गया और उन्हें उसी ठौर दबा रक्खा। तड़फा ज़रूर किए पर उड़ने जरा भी न दिया।

सत्य बोला, भोज! बस यही तेरे पुण्य कर्म हैं, इन्हीं स्तुति-वंदना और विनती-प्रार्थना के भरोसे पर तू स्वर्ग में जाया चाहता है? सूरत तो इनकी बहुत अच्छी है पर जान बिलकुल नहीं, तूने जो कुछ किया केवल लोगों को दिखलाने को, जी से कुछ भी नहीं। जो तूने एक बार भी जी से पुकारा होता कि दीनबंधु दीनानाथ दीनहितकारी! मुझ पापी, महाअपराधी, डूबते हुए को बचा और कृपा-दृष्टि कर, तो वह तेरी पुकार तीर की तरह तारों से पार पहुँची होती। राजा ने सिर नीचा कर लिया उत्तर कुछ न बन आया। —राजा शिवप्रसाद

पाठ-सहायक

मृग-तृष्णा—गर्मी के दिनों में मृग प्यास के मारे जब अपने चारों ओर मैदान में जल के लिये दृष्टि डालते हैं तब उन्हें सूर्य्य-प्रकाश लहराते हुए जल के समान दीखता है, बस उसी ओर वे भागते हैं और उसे पाते नहीं। अस्तु इसके अर्थ हैं—भ्रम. त्रसरेणु—धूल-कण जो वायु में मिले रहते हैं।

अनगिनत—(अगणित) अन—नहीं, गिनती—गिनती, गोबर-गनेश—मूर्ख।

अभ्यास

१—इस पाठ की भाषा में क्या विशेषता तुम्हें ज्ञात होती है?

२—वर्तमान खड़ी बोली और इस भाषा में क्या अंतर है, जहाँ भेद जान पड़ता है वहाँ परिवर्तन करो।

३—कहानी की भाषा कैसी होनी चाहिए, इस कहानी में यह कहाँ तक घटित होता है?

४—इन्हें अब किस रूप में लिखा जाता है,

भोज डरा लेकिन सत्य का साथ न छोड़ा।
उनका पख... हो गया और उन्हें उसी ठौर दबा रक्खा।
तडफा ज़रूर किए पर उड़ने ज़रा भी न दिया।
राजा के जी में घमड...जगमगा उठा।

इसी प्रकार के अन्य वाक्य चुनो और उनमें यथोचित परिवर्तन करो।

५—इस कहानी से क्या उपदेश मिलता है, उस पर तुम्हारा क्या विचार है?

६—राजा को पेड और पक्षी क्यों दूसरे रूपों में दीखते थे?

७—इस पाठ के उर्दू-शब्दों के स्थान पर हिन्दी के उपयुक्त शब्द रक्खो।

८—अपने वाक्यों में प्रयुक्त कर भावार्थ लिखो—

ठडी साँस लेना, बे-नींव का घर है, आन की आन, पासग में न ठहरना, आँखें खोलना।

९—कैसे शब्द हैं, इनके पर्यायवाची शब्द लिखो—

तई, पासग, धरती, निरे, सपने, टुक, परकटे।

१०—किन अर्थों में प्रयुक्त हुए हैं, भिन्न भिन्न अर्थों में प्रयुक्त करो—

नए, मारे, हरा, पद, आन, दम, सही

११—इसी प्रकार की एक कहानी तुम भी लिखकर "सरस्वती" पत्रिका के लिये भेजो।

संकेत—

१—राजा शिवप्रसाद की भाषा की विशेषता बताना।

२—कहानी की भाषा और रचना-शैली पर प्रकाश डालना।

---

(५) कर्तव्योत्तेजना

पुरुष हो, पुरुषार्थ करो , उठो ।

पुरुष क्या पुरुषार्थ हुआ न जो,
हृदय की सब दुर्बलता तजो ।
प्रबल जो तुममे पुरुषार्थ हो—
सुलभ कौन तुम्हें न पदार्थ हो ?
प्रगति के पथ में विचरो, उठो;
पुरुष हो, पुरुषार्थ करो, उठो ॥१॥

न पुरुषार्थ विना कुछ स्वार्थ है;
न पुरुषार्थ बिना परमार्थ है ।
समझ लो यह बात यथार्थ है—
कि पुरुषार्थ वही पुरुषार्थ है ।
भुवन मे सुख-शांति भरो, उठो,
पुरुष हो, पुरुषार्थ करो, उठो ॥२॥

न पुरुषार्थ विना वह स्वर्ग है;
न पुरुषार्थ विना अपवर्ग है ।
न पुरुषार्थ विना क्रियता कही,
न पुरुषार्थ विना प्रियता कहीं

सफलता वर तुल्य वरो, उठो;
पुरुष हो, पुरुषार्थ करो, उठो ॥३॥

न जिसमे कुछ पौरुष हो यहाँ—
सफलता वह पा सकता कहाँ ?
अपुरुषार्थ भयंकर पाप है;
न उसमे यश है, न प्रताप है।
न कृमि-कीट-समान करो, उठो,
पुरुष हो, पुरुषार्थ करो, उठो ॥४॥

मनुज-जीवन मे, जय के लिये—
प्रथम ही दृढ़ पौरुष चाहिए।
विजय तो पुरुषार्थ बिना कहाँ,
कठिन है चिरजीवन भी यहाँ।
भय नहीं, भव-सिंधु तरो, उठो,
पुरुष हो, पुरुषार्थ करो, उठो ॥५॥

यदि अनिष्ट अड़ें, अड़ते रहें।
विपुल विघ्न पड़ें, पड़ते रहें।
हृदय मे पुरुषार्थ रहे भरा—
जलधि क्या, नभ क्या, फिर क्या धरा ?
दृढ रहो, ध्रुव धैर्य धरो, उठो,
पुरुष हो, पुरुषार्थ करो, उठो ॥६॥

यदि अभीष्ट तुम्हे निज स्वत्व है,
प्रिय तुम्हें यदि मान-महत्त्व है।
यदि तुम्हे रखना निज नाम है;
जगत मे करना कुछ काम है।
मनुज ! तो श्रम से न डरो, उठो,
पुरुष हो, पुरुषार्थ करो, उठो ॥७॥

(२)

वही मनुष्य है कि जो मनुष्य के लिये मरे

विचार लो कि मर्त्य हो, न मृत्यु से डरो कभी;
मरो, परंतु यों मरो कि याद जो करें सभी।
हुई न यों सु-मृत्यु तो वृथा मरे, वृथा जिये,
मरा नहीं वही कि जो जिया न आपके लिये।
यही पशु-प्रवृत्ति है कि आप ही सदा चरे,
वही मनुष्य है कि जो मनुष्य के लिये मरे ॥१॥

उसी उदार की कथा सरस्वती बखानती,
उसी उदार से धरा कृतार्थ-भाव मानती।
उसी उदार की सदा सजीव कीर्ति कूजती,
तथा उसी उदार को समस्त सृष्टि पूजती।
अखंड आत्मभाव जो असीम विश्व में भरे,
वही मनुष्य है कि जो मनुष्य के लिये मरे ॥२॥

क्षुधार्थ रंतिदेव ने दिया करस्थ थाल भी,
तथा दधीचि ने दिया परार्थ अस्थि-जाल भी।
उशीनर-क्षितीश ने स्वमांस दान भी किया,
सहर्ष वीर कर्ण ने शरीर-चर्म भी दिया।
अनित्य देह के लिये अनादि जीव क्या डरे,
वही मनुष्य है कि जो मनुष्य के लिये मरे॥३॥

सहानुभूति चाहिए, महा विभूति है यही,
वशीकृता सदैव है बनी हुई स्वयं मही।
विरुद्ध-वाद बुद्ध का दया-प्रवाह मे बहा;
विनीत लोकवर्ग क्या न सामने झुका रहा?
अहा? वही उदार है परोपकार जो करे,
वही मनुष्य है कि जो मनुष्य के लिये मरे॥४॥

रहो न भूल के कभी मदांध तुच्छ वित्त में,
सनाथ जान आपको करो न तर्क चित्त में।
अनाथ कौन है यहाँ, त्रिलोकनाथ साथ हैं,
दयालु दीनबंधु के बड़े विशाल हाथ हैं।
अतीव भाग्यहीन है, अधीर भाव जो भरे,
वही मनुष्य है कि जो मनुष्य के लिये मरे॥५॥

अनन्त अन्तरिक्ष मे अनन्त देव हैं खड़े,
समक्ष ही स्व-बाहु जो बढ़ा रहे बड़े बड़े।

परस्परावलंब से उठो, तथा बढ़ो सभी,
अभी अमर्त्य-अंक में अपंक हो चढ़ो सभी।
रहो न यों कि एक से न काम और का सरे,
वही मनुष्य है कि जो मनुष्य के लिये मरे ॥६॥

"मनुष्य-मात्र बंधु हैं" यही बड़ा विवेक है;
पुराणपुरुष स्वभू पिता प्रसिद्ध एक है।
फलानुसार कर्म्म के अवश्य बाह्य भेद हैं,
परंतु अंतरैक्य में प्रमाणभूत वेद हैं।
अनर्थ है कि बंधु हो न बंधु की व्यथा हरे,
वही मनुष्य है कि जो मनुष्य के लिये मरे ॥७॥

—मैथिलीशरण गुप्त

पाठ-सहायक

अपवर्ग—मोक्ष, देखो—'यदि अनिष्ट अड़े अड़ते रहे"—यहाँ ३ शब्दों में अ प्रथम आया है, कैसा सुंदर शब्द-संगठन है, इसे अनुप्रास कहते हैं—ऐसी ही और पंक्तियाँ खोजो—छंद नं० ६ में क्या शब्द का कई बार प्रयोग करने से कितना ज़ोर आ गया है, इसी प्रकार क्रिया आदि अन्य शब्दों की भी आवृत्ति की जाती है—ऐसी पंक्तियाँ चुनो।

विनश्वर—वि-विशेषतया + नश्वर-नाशवान्—यहाँ वि उपसर्ग का अर्थ विशेष है, इसका अर्थ बिना भी होता है—यथा विजनवन—बिना जन या मनुष्यवाला वन, मदांध—मद से अंध।

अभ्यास

१—इस कविता से तुम्हें क्या प्रोत्साहन प्राप्त होता है ?

२—प्रथम कविता का सारांश लिखकर उस पर एक लेख लिखो और उसकी सुंदर पंक्तियाँ कंठाग्र करो।

३—द्वितीय कविता के आधार पर एक पत्र अपने किसी मित्र को लिखो जिसमें इसकी कुछ पंक्तियों का उपयोग करो।

४—द्वितीय कविता के छंद २ में "उसी उदार" पद की क्यों पुनरुक्ति की गई है, इसी प्रकार तुम भी किसी पद की पुनरुक्ति करो।

५—क्या अर्थ है, वाक्यों में प्रयोग कर समझाओ—

परस्परावलंब, अंतरैक्य, अमर्त्यअंक. आत्मभाव, पशु-प्रवृत्ति।

६—गुणवाचक संज्ञाएँ बनाओ—

परस्पर, विवेक, प्रमाण, खेलना।

इसी प्रकार भाववाचक संज्ञाएँ बनाओ—

समर्थ, प्रमाण, बंधु, तुच्छ।

७—सविग्रह समास बताओ—

परस्परावलंब, पुराणपुरुष, अखंड, आत्मभाव, पशु-प्रवृत्ति, त्रिलोक-नाथ।

८—ऐसे शब्द लिखो जिनको समानांत कहा जा सके—उनका प्रयोग भी करो—अंक, तक, वाद।

९—अंतर बताओ और प्रयोग करो—

अवश्य, अ वश्य, सामने—साम ने।

१०—भिन्न भिन्न अर्थों में प्रयुक्त करो—

काम, जिया, धरा, भाव, जान।

११—पर्यायवाची शब्द लिखो—

देव, स्वभू, विश्व सरस्वती।

संकेत—

१—इसी प्रकार की अन्य प्रोत्साहक कविताएँ सुनाना और याद कराना।

---

(६) शेर का शिकार

शिकार खेलने की प्रथा बहुत प्राचीन है। जो लोग मांसाहारी नहीं हैं वे भी सिंह, बाघ और चीता आदि हिंस्र जंतुओं के शिकार को बुरा नहीं समझते। रामायण और महाभारत आदि प्राचीन इतिहास-ग्रंथों मे मृगया का उल्लेख मिलता है। आखेट में मनोरंजन के साथ-साथ जहाँ व्यायाम होता है, वहाँ साहसिक कार्यों के करने की शक्ति भी बढ़ती है।

कल-कारख़ानों और रेल-मोटर के प्रचार से अब सिंह, चीता, बाघ, हाथी और रीछ आदि जंतु बस्तियों से बहुत दूर चले गए हैं उदाहरणार्थ दिल्ली के इर्द-गिर्द पचास मील के अंदर इस प्रकार के शिकार का मिलना कठिन है। परंतु देशी रजवाड़ो मे अभी कल-कारख़ानों का उतना प्रचार नहीं है वहाँ मोटर और रेल की सड़कों का जाल भी कम ही फैला है इसलिये वहाँ अब तक भी घने जंगल हैं और उनमे शिकार की बहुतायत है। इस समय शेर जूनागढ़-राज्य में और जंगली हाथी मैसूर मे ही मिलते हैं।

वन का राजा निस्संदेह शेर ही है। यह शेर बबर से भी अधिक मक्कार और अधिक उग्र होता है। चुस्ती और मज़बूती मे भी उससे कम नहीं है। शेर के मारने की दो विधियाँ हैं। एक विधि तो यह है कि एक विशेष रूप से ऊँचा मचान बनाया

जाता है। उसके निकट ही बकरी आदि कोई पशु बाँध दिया जाता है। रात को जब शेर उसे खाने आता है तब शिकारी मचान पर से उस पर गोली चलाता है। दूसरी विधि यह है कि लोग एक विशेष ढंग से शेर को ससकारकर जंगल के एक खुले स्थान मे ले आते हैं। वहाँ शिकारी हाथियों पर बैठे हुए दिन के समय उसे बंदूक़ का निशाना बनाते हैं।

शिकारी लोग पहली विधि को उतना पसंद नहीं करते। यह विधि तो बस्ती के आस-पास से चीतों और बाघों के भगाने के लिये ही उपयुक्त समझी जाती है। दूसरी विधि—हाथी पर से दिन के समय शेर को गोली से मारना—सब प्रकार से अच्छी है। इसमे शिकारी की वीरता भी देखी जाती है।

राजा लोग जब हाथी पर सवार होकर शेर का शिकार खेलने जाते हैं तब उनके साथ बहुत-से सशस्त्र सिपाही और झाड़ियों को हिलाकर शेर को हाँकनेवाले एक विशेष जाति के मनुष्य भी रहते हैं। ये लोग शिकारी कहलाते हैं। कई पीढ़ियों से ये यही काम करते हैं। इनको शेर के स्वभाव का पैतृक ज्ञान रहता है। शेर जब रात की मार के बाद सवेरे वापस आता है तब ये उसका ध्यान रखते हैं। इनके हाथ मे लम्बी लम्बी लाठियाँ होती हैं। लाठी के सिरे पर भाला लगाने के लिये जगह बनी होती है, ताकि झाड़ियों को हिलाकर शेर को आगे हाँकते समय यदि वह किसी मनुष्य पर आक्रमण कर दे तो इस भाले से रोका जा सके। शेर



जब गोली खाकर भाग जाता है तब हाथी पर चढ़ कर ही उसके पास पहुँचते हैं।

शिकार के घने जंगल बड़े बड़े टुकड़ों में बँटे रहते हैं। इनके बीच बड़े चौड़े रास्ते बने होते हैं। एक रास्ता कोई पचास गज़ चौड़ा होता है और पर्वत के पैर से आरंभ होकर उसकी पीठ तक चला जाता है। जंगल से लकड़ी और घास इन्हीं मार्गों से काट कर लाई जाती है। ये मार्ग शेरों को एक जंगल से हाँक कर दूसरे जंगल में ले जाने में भी काम देते हैं। इस मार्ग को पार करते समय ही शेर पर गोली चलाई जा सकती है। घने जंगल में, वृक्षों की ओट के कारण, निशाना लगाना कठिन होता है।

शिकारी लोग शेर को ससकारकर इन खुले रास्तों में ले आते हैं। तब राजा लोग हाथी पर से उस पर गोली चलाते हैं। शेर को हाँकने के लिये सबसे अच्छा समय दिन का तीसरा पहर होता है। हाथी ऐसे सधे होते हैं कि वे शेर के झुँझलाकर आक्रमण करने पर भी अपने स्थान से नहीं हिलते। प्रत्येक हाथी पर महावत के अतिरिक्त तीन चार बंदूकवाले मनुष्य भी रहते हैं।

रात को पेट भर खाने के बाद दिन में सोये हुए शेर को जगाने में वह क्या कुछ नहीं कर डालेगा, यह कहना कठिन है। शेर इस खुले मार्ग को पार करते समय घुड़-दौड़ के घोड़े के समान सरपट दौड़ता है। परंतु उसको गोली की मार में लाना आवश्यक है। इसलिये इसके भाग निकलने के मार्गों को परिमित बनाने के लिये एक निराला उपाय किया जाता है।

लकड़ी के आदमी बनाकर—उनके सिर पर पगड़ी, गले में कमीज़ और नीचे पायजामा पहनाकर—इस खुले रास्ते के साथ-साथ एक पंक्ति में गाड़ दिए जाते हैं। कहते हैं, एक बार एक शेर ने, इनको सचमुच का आदमी समझ कर, इन पर आक्रमण कर दिया था। पर उनको अचल खड़ा देखकर वह डरकर पीछे भाग आया था।

शिकारी लोग इन बनावटी आदमियों को बड़े चुपके से गाड़ते हैं, क्योंकि ज़रा-सी भी आहट होने पर 'धारियोंवाले जंतु' को संदेह हो जाता है और वह चट पहाड़ के ऊपर भाग जाता है।

शिकारी लोग जब शेर को हाँकने लगते हैं तब बिगुल का एक शब्द किया जाता है। ससकारते समय अवस्थाओं के अनुसार कभी तो शिकारी बिलकुल चुपचाप रहते हैं और कभी शोर करते हैं। शेर का शिकार करते समय कभी कभी लकड़बग्घे और साँभर आदि दूसरे जंतु भी निकल आते हैं।

शेर का सबसे कमज़ोर भाग उसके कंधे होते हैं। यहीं गोली का घातक घाव लगता है। घायल होकर शेर कभी कभी इतने ज़ोर से आक्रमण करता है कि वह उछल कर हाथी के हौदे पर पहुँच जाता है। शेर के आक्रमण करने पर हाथी भय से चिंघाड़ने लगता है। गोली खाते ही शेर वहीं गिर नहीं पड़ता। मरकर गिरने से पहले वह पाँच पाँच गोलियाँ खाकर भी कई गज़ तक भाग जाता है।

कई लोग अहंकार से पैदल शेर पर गोली चलाने की डींग हाँका करते हैं। पर घने जंगल मे पैदल शेर पर गोली चलाना पागलपन से कम नहीं है। जब तक शेर के ठीक हृदय या मस्तिष्क में गोली न लगे वह सीधा गोली चलानेवाले पर झपटता है और प्रायः बहुत अधिक हानि पहुँचा देता है। इसके दाँतों और पंजो के घाव सदा सड़ जाते हैं। वे आसानी से चंगे भी नहीं होते।

शेर और चीता बिल्ली की जाति के जन्तु हैं। वे अपना ही मारा हुआ शिकार खाते हैं। जिस बैल को शेर आज मारता है उसे वह सारा का सारा आज ही नहीं खा लेता। उसका कुछ भाग कल रात के लिये भी छोड़ देता है। इसलिये उस मारे हुए बैल के निकट किसी वृक्ष पर मचान बनाया जाता है। रात को जब शेर उस बैल का अवशिष्टांश खाने आता है तब मचान पर से वह गोली का निशाना बनाया जाता है। इस मतलब के लिये शिकारी जंगल मे किसी जगह एक बैल या बकरी बाँध देते हैं। जब शेर उसे खाने आता है तब वे उसका शिकार करते हैं।

कई मचान स्थायी होते हैं। वे मीनार के सदृश पत्थर के बनाए जाते हैं। पर अब ऊँचे मचान न बनाकर भूमि ही पर लोहे के मज़बूत तार के पिंजरे बनाए जाते हैं, ये झाड़ियों से ढँक दिए जाते हैं। शेर को फँसाने के लिये बाँधे हुए बैल के ऊपर मध्यम-सा प्रकाश लटका दिया जाता है। जब तक यह प्रकाश बहुत ही तेज़ न हो ये मांसाहारी जंतु उसकी कुछ परवा

नहीं करते। एक बार खाना शुरू कर देने पर फिर चाहे उस बिजली के प्रकाश को—यदि यह बिजली का प्रकाश हो—कितना भी तेज़ कर दो, ये जंतु डरते नहीं। इस प्रकाश की सहायता से निशाना बाँधने में बड़ी आसानी रहती है।

बिल्ली की जाति के जंतुओं में सूँघने की शक्ति उतनी तेज़ नहीं होती, परंतु इनकी सुनने की शक्ति आश्चर्यजनक है। तनिक-सी आहट, खाँसी, या काना-फूसी से ही शेर या चीता दूर भाग जाता है और फिर सारी रात वहाँ नहीं आता। ये हिंस्र जंतु बड़े चुपके से अपने शिकार के इर्द-गिर्द रेंगते हैं। फिर धीरे-धीरे पीछे से जाकर उस पर झपटते और एक ही वार में पंजा मारकर उसका काम तमाम कर देते हैं। पशु को मार डालने के बाद बाघ लौट आता है और फिर किसी दूसरे समय उसे खाने जाता है। इस समय यदि बाघ शिकारी की गोली से घायल हो जाय, तो शिकारी को दिन चढ़ने से पहले अपने मचान या पिंजरे के छोड़ने का साहस न करना चाहिए। जिस समय घायल बाघ निकट ही खुला घूम रहा हो, उस समय अँधेरे में मचान से नीचे उतर कर जंगल में चलना मानो मृत्यु का आह्वान करना है।

एक बार एक शेर घायल होकर एक पेड़ पर चढ़ गया था और वहाँ से उसने मचान में बैठे हुए शिकारी को नीचे घसीट कर मार डाला था। घायल चीता कभी-कभी पिंजरे पर भी चढ़ जाता है और गोली चलाने के सुराखों में पंजे डाल-

कर शिकारी पर आक्रमण करता है। फिर भी पिंजरा मचान से अच्छा होता है।

अंधकारमय निस्तब्ध वन में चुपचाप बैठकर इन भीषण जंतुओं के आने की प्रतीक्षा करना बड़ा रोमांचकारी होता है। पिंजरे में बंद बाघ एक लंबा चौड़ा जंतु देख पड़ता है। पर जंगल में उसके पीले और काले धब्बे उसके इर्द-गिर्द की चीज़ों के साथ पूर्णरूप से मिल जाते हैं। वृक्षों के घने पत्तों में से छनकर पड़नेवाले सूर्य के प्रकाश के कारण उसका पहचानना और भी कठिन हो जाता है।

अब एक दूसरे प्रकार के शिकार का हाल सुनिए। मगर भारत की नदियों में बहुत पाया जाता है। जो भी जंतु या मनुष्य इसके पंजे में फँस जाय यह उसे घसीट कर पानी में ले जाता है। प्रतिवर्ष बीसियों स्त्रियाँ और बच्चे, नदियों में नहाते हुए, बड़े बड़े घड़ियालों के ग्रास बनते हैं। यह हिंस्र जंतु अपनी मज़बूत पूँछ की लपेट से अपने आखेट को पानी में गिरा देता है। फिर उसका हाथ या पैर पकड़कर उसे पानी के नीचे घसीट ले जाता है। जब वह डूबकर मर जाता है तब यह उसे फुरसत के वक्त निगल जाता है।

मगर दोपहर के समय नदी से निकलकर किनारे की रेत पर धूप तापने आता है। तब शिकारी हाथ में बंदूक लिए चुपचाप रेंगता हुआ, सावधानी के साथ, पानी के किनारे पर जा पहुँचता है और जहाँ मगर का सिर धड़ से मिलता

है वहाँ ताककर गोली मारता है। मगर की यही जगह सबसे कमज़ोर होती है।

गोली खाकर मगर अनेक बार नदी में भाग जाता है। फिर इसका पकड़ना कठिन होता है। नदियों के किनारे एक विशेष जाति के लोग रहते हैं। वे मगरों से बिलकुल नहीं डरते। वे लँगोटी पहन कर, हाथ मे बाँस लिए, घड़ियालों से भरी हुई नदी मे घुस जाते हैं, और जहाँ पानी में से ऊपर को लहू निकलता दीखता है वहाँ बाँस से टटोलकर डुबकी लगाते हैं और घायल जन्तु को किनारे पर घसीट लाते हैं। कहते हैं, इन लोगों के शरीर से एक विशेष प्रकार की गंध आती है। इससे मगर इनको नहीं खाता।

जंगली सूअर भी बड़ा भयानक जंतु है। घायल हो जाने पर यह शिकारी पर बहुत बुरी तरह से आक्रमण करता है। यह सवार के घोड़े की टाँगों को अपने मज़बूत और तीक्ष्ण दाँतों से चीर कर उसे गिरा देता है। तब शिकारी का बचना कठिन हो जाता है। इस समय शिकारी के लिये प्राण-रक्षा का एक ही उपाय रह जाता है। वह यह कि वह निश्चल पड़ा रहे। उसके जरा-सा भी हिलने-डुलने पर सूअर तीर की तरह उस पर झपटता है और एक सेकंड मे उसको चीर डालता है। दूसरे सवार साथ हो तो भालों और बर्छियों से सूअर को दूर हटा भी ले जा सकते हैं, पर साथियों की सहायता के लिये शिकारी के पास पहुँचने मे जितनी देर लगती है

उतने मे सूअर मनुष्य का काम तमाम कर देता है। इसलिये रक्षा की आशा चुपचाप पड़े रहने ही मे है।

पंजाब मे एक विशेष जाति के लोग जाल लगाकर डंडो से ही सूअर को मार डालते हैं। कुछ वर्ष हुए रावी-नदी के किनारे इन लोगो को सूअर का शिकार करते देखने का अवसर लेखक को भी मिला था। सूअर के जाल मे फँसते ही उन लोगों ने इसे कौली भरकर गिरा दिया और डंडे मार-मार कर मार डाला। इस कुश्ती में एक आदमी का हाथ सूअर के दाँतों से घायल भी हो गया था।

ख़रगोश और हिरण के शिकार में बाज़ो, शिकरों और कुत्तो से सहायता ली जाती है। एक समय एक शिकारी-दल में सम्मिलित होने का मुझे भी मौक़ा मिला था। वहाँ एक ख़रगोश कुत्तो से बचकर छिप गया। परंतु ऊपर उड़ते हुए बाज़ ने उसे देख लिया। वह उस पर झपटा और कानो को पकड़कर उसे आकाश मे ले उड़ा। जब तक कुत्ते वहाँ न पहुँच गए वह उसे आकाश मे ही उठाए रहा। उनके पहुँच जाने पर उसने उसे पृथ्वी पर गिरा दिया और कुत्तो ने उसे दबोच लिया।

—सन्तराम

पाठ-सहायक

बहुतायत—अधिकता, देखो कैसे बना है। आक्रमण—हमला, मस्तिष्क—दिमाग, अवशिष्ट—शेष, बचा हुआ।

अभ्यास

१—शेर का शिकार कैसे किया जाता है, संक्षेप से लिखो।

२—शेर आदि की प्रकृति का कैसा प्रतिबिंब यहाँ दीखता है ?

३—इन जोड़ेवाले शब्दो को देखो और इन्हीं के समान अन्य जोड़े-वाले शब्द लिखो—

इर्द-गिर्द, काना-फूसी, आस-पास, लम्बा-चौड़ा।

४—भावार्थ लिखो और वाक्यों मे प्रयोग करो —

डींग हाँकना, मृत्यु का आह्वान करना है, निशाना बनाना, काम तमाम करना।

५—अतर बताओ और प्रयोग करके समझाओ—

धीरे-धीरे, धीरे से धीरे, बड़े बड़े, बड़े से बड़े, बड़े के बड़े।

६—यहाँ किन शब्दों के साथ दो कारकों की विभक्तियाँ लगाई गई हैं, और क्यों ? इसी प्रकार के तुम भी कई उदाहरण दो।

७—भिन्न भिन्न मात्राओं से कौन कौन शब्द बन जाते हैं—

अचल, शेर, जाते, बैल, खुले।

८—व्याख्या करो और समझाओ कैसे बने हैं—

घुड़दौड़, बनावटी, ससकारना, आस-पास, पायजामा।

९—मूल शब्द बताते हुए नियम लिखो—

पैतृक, अवशिष्ट, हिंस्र।

१०—प्रथम अनुच्छेद का वाक्य-विश्लेषण करो।

संकेत—

१—अन्य पशुओं के शिकारों का परिचय देना।

२—नक़शे में देशी रियासतों को दिखाकर हाल बताना।

(७) आप

भला बतलाइए तो आप क्या हैं? आप कहते होंगे, वाह! आप तो आप ही हैं। यह कहाँ की आपदा आई? यह भी कोई पूछने का ढंग है? पूछा होता कि आप कौन हैं तो बतला देते कि हम आपके पत्र के पाठक हैं और आप ब्राह्मण-संपादक[१] हैं अथवा आप पंडित जी हैं, आप राजा जी हैं, आप सेठ जी हैं, आप लाला जी हैं, आप बाबू साहब हैं, आप मियाँ साहब, आप निरे साहब हैं। आप क्या हैं? यह तो कोई प्रश्न की रीति ही नहीं है। वाचक महाशय! यह हम भी जानते हैं कि आप आप ही हैं और हम भी वही हैं, तथा इन साहबों की भी लंबी धोती, चमकीली पोशाक, खुँटिहई अँगरखा (मिरजई), सीधी माँग, विलायती चाल, लंबी दाढ़ी और साहबानी हवस ही कहे देती है कि—

"किस रोग की है आप दवा कुछ न पूछिए,"

अच्छा साहब, फिर हमने पूछा तो क्यों पूछा? इसी लिये कि देखें आप "आप" का ज्ञान रखते हैं वा नहीं? जिस "आप" को आप अपने लिये तथा औरों के प्रति दिन-रात मुँह पर धरे रहते हैं, वह आप क्या है? इसके उत्तर में आप कहिएगा कि

---

१ कानपुर से निकलनेवाला पत्र, जिसके सम्पादक प० प्रताप नारायण जी मिश्र थे।

एक सर्वनाम है। जैसे मैं, तू, हम, तुम, यह, वह आदि हैं वैसे ही आप भी है, और क्या है। पर इतना कह देने से न हमको संतोष होगा न आप ही को शब्द-शास्त्र-ज्ञान का परिचय होगा, इससे अच्छे प्रकार कहिए कि जैसे 'मैं' का शब्द अपनी नम्रता दिखलाने के लिये बिल्ली की बोली का अनुकरण है, 'तू' शब्द मध्यम पुरुष की तुच्छता व प्रीति के सूचित करने के अर्थ कुत्ते के संबोधन की नक़ल है। हम, तुम संस्कृत के अहं और त्वं के अपभ्रंश हैं, यह और वह निकट और दूर की वस्तु वा व्यक्ति के द्योतनार्थ स्वाभाविक उच्चारण हैं, वैसे 'आप' क्या है? किस भाषा के किस शब्द का शुद्ध वा अशुद्ध रूप है और आदर ही मे बहुधा क्यों प्रयुक्त होता है?

हुज़ूर की मुलाज़मत से अक़्ल ने इस्तेफ़ा दे दिया हो तो दूसरी बात है, नहीं तो आप यह कभी न कह सकेंगे कि "आप लफ़्ज़े फ़ारसी या अरबीस्त," अथवा "ओः! इटिज़ एन इँगलिश वर्ड[१]," जब यह नहीं है तो ख़ाहमख़ाह यह हिंदी-शब्द है, पर कुछ सिर-पैर, मूड़-गोड़ भी है कि यों ही? आप छूटते ही सोच सकते हैं कि संस्कृत में अप कहते हैं जल को और शास्त्रों मे लिखा है कि विधाता ने सृष्टि की आदि में उसी को बनाया था तथा हिंदी मे पानी और फ़ारसी मे आब का अर्थ शोभा अथ च प्रतिष्ठा आदि हुआ करता है, जैसे—"पानी उतरि गा तरवारिन का उइ करछुली के मोल बिकाँय", तथा "पानी उतरिगा रजपूती

१ (अँगरेजी)—यह अँगरेज़ी का शब्द है।

का उड़ फिर बिसुऔ ते (वेश्या से भी) बहि जायँ," और फ़ारसी मे 'आबरू ख़ाक मे वह अपनी मिला बैठे हैं' इत्यादि।

इस प्रकार पानी की ज्येष्ठता और श्रेष्ठता का विचार करके लोग पुरुषों को भी उसी के नाम से आप पुकारने लगे होंगे। यह आपका समझना निरर्थक तो न होगा, बड़प्पन और आदर का अर्थ अवश्य निकल आवेगा, पर खींचखाँच कर और साथ ही यह शंका भी कोई कर बैठे तो अयोग्य न होगी कि पानी के जल, वारि, अंबु, नीर, तोय इत्यादि और भी तो कई नाम हैं उनका प्रयोग क्यों नहीं करते, "आप" ही के सुरख़ाब का पर कहाँ लगा है ? अथवा पानी की सृष्टि सबके आदि में होने के कारण वृद्ध ही लोगों को उसके नाम से पुकारिए तो युक्ति-युक्त हो सकता है पर आप तो अवस्था मे छोटों को भी आप आप कहा करते हैं, यह आपकी कौन-सी विज्ञता है ? या हम यों भी कह सकते हैं कि पानी मे गुण चाहे जितने हों, पर गति उसकी नीचे हो होती है। तो क्या आप हमको मुँह से आप आप करके अधोगामी बनाया चाहते हैं ? हमे निश्चय है कि आप पानीदार होंगे तो इस बात के उठते हो पानी-पानी हो जायँगे और फिर कभी यह शब्द मुँह पर भी न लावेंगे।

सहृदय सुहृद्गण आपस में आप आप की बोली बोलते भी नहीं हैं। एक हमारे उर्दूदाँ मुलाक़ाती मौखिक मित्र बनने की अभिलाषा मे आते-जाते थे, पर जब ऊपरी व्यवहार मित्रता का-सा देखा तो हमने उनसे कहा कि बाहरी लोगों के सामने की बात

न्यारी है, अकेले में अथवा अपनायतवालों के आगे आप आप न किया करो, इसमें भिन्नता की भिनभिनाहट पाई जाती है। पर उन्होने इसको न माना, हमने दो-चार बार समझाया, पर वह 'आप' थे क्यो मानने लगे ? इस पर हमे झुँझलाहट छूटी तो एक दिन उनके आते ही और 'आप' का शब्द मुँह पर लाते ही हमने कह दिया कि "आपकी ऐसी तैसी" ? यह क्या बात है कि तुम मित्र बनकर हमारा कहना नहीं मानते ? प्यार के साथ र कहने मे जितना स्वाद आता है उतना बनावट से आप-सॉप कहा तो कभी सपने मे भी नहीं आने का। इस उपदेश को वे मान गए। सच तो यह है कि प्रेम-शास्त्र मे, कोई बंधन न होने पर भो, इस शब्द का प्रयोग बहुत ही कम वरंच नहो के बराबर होता है।

हिंदो की कविता मे हमने दो ही छंद इससे युक्त पाए हैं, एक 'आपको न चाहे ताके बाप को न चाहिए', पर यह न तो किसी प्रतिष्ठित ग्रंथ का है और न इसका आशय स्नेह-संबद्ध ही है। किसी जले-भुने कवि ने कह मारा हो तो यह कोई नहीं कह सकता कि कविता मे भी "आप" की पूँछ है। दूसरा घनानंद[१] जी का यह सवैया है—"आप ही तौ मन हेरि हर्‌यौ तिरछे करि नैनन नेह के चाव मे" इत्यादि। पर यह भी निराशापूर्ण उपालंभ है, इसमे हमारे कथन का कोई

१ व्रजभाषा के एक उच्च कोटि के प्रेमी एव रसिक कवि थे, इनकी पुस्तके पढने योग्य हैं।

खंडन नहीं कर सकता कि प्रेमी-समाज मे "आप" का आदर नहीं है, तू ही प्यारा है।

संस्कृत और फ़ारसी के कवि भी त्वं और तू के आगे भवान् और शुमा (तू का बहुवचन) का बहुत आदर नहीं करते। पर इससे आपको क्या मतलब ? आप अपनी हिंदी के 'आप' का पता लगाइए और न लगे तो हम बतला दें। संस्कृत में एक आप्त शब्द है, जो सर्वथा माननीय ही अर्थ मे आता है, यहाँ तक कि न्यायशास्त्र मे प्रमाण-चतुष्टय (प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द) के अंतर्गत शब्द-प्रमाण का लक्षण ही यह लिखा है कि "आप्तोपदेशः शब्दः" अर्थात् आप्त पुरुष का वचन प्रत्यक्षादि प्रमाणों के समान ही प्रामाणिक होता है, वा यों समझ लो कि आप्त जन प्रत्यक्ष, अनुमान और उपमान प्रमाण से सर्वथा प्रमाणित ही विषय को शब्द-बद्ध करते हैं।

इससे जान पड़ता है कि जो सब प्रकार की विद्या, बुद्धि, सत्य भाषणादि सद्गुणों से संयुक्त हो वह आप्त है, और देव-नागरी भाषा में आप्त शब्द सबके उच्चारण में सहज में नहीं आ सकता, इससे उसे सरल करके आप बना लिया गया है और मध्यम पुरुष तथा अन्य पुरुष के अत्यन्त आदर का द्योतन करने के काम में आता है। 'तुम बहुत अच्छे मनुष्य हो' और 'ये बड़े सज्जन हैं'—ऐसा कहने से सच्चे मित्र या बनावट के शत्रु चाहे जैसे "पुलक प्रफुल्लित पूरित गाता" हो जायँ, पर व्यवहार-कुशल लोकाचारी पुरुष तभी अपना उचित सम्मान

समझेंगे जब कहा जाय कि "आपका क्या कहना है, आप तो बस सभी बातों में एक ही हैं" इत्यादि।

अब तो आप समझ गए होंगे कि आप कहाँ के हैं, कौन हैं, कैसे हैं। यदि इतने बड़े बात के बतंगड़ से भो न समझे हों तो इस छोटे से कथन में हम क्या समझा सकेंगे कि 'आप' संस्कृत के आप्त शब्द का हिन्दीरूपान्तर है और माननीय अर्थ के सूचनार्थ उन लोगों (अथवा एक ही व्यक्ति) के प्रति प्रयोग में लाया जाता है जो सामने विद्यमान हों, चाहे बातें करते हों, चाहे बात करनेवालों के द्वारा पूछे-बताए जा रहे हों, अथवा दो वा अधिक जनों में जिनकी चर्चा हो रही हो।

कभो कभी उत्तम पुरुष के द्वारा भो इसका प्रयोग होता है, वहाँ भो शब्द और अर्थ वही रहता है; पर विशेषता यह रहती है कि एक तो सब कोई अपने मन से आपको (अपने तईं) आप हो (आप्त हो) समझता है, और विचार कर देखिए तो आत्मा और परमात्मा की अभिन्नता या तद्रूपता कहीं लेने भो नहीं जानी पड़तो, पर बाह्य व्यवहार में अपने को आप कहने से यदि अहंकार की गंध समझिए तो यों समझ लीजिए कि जो काम अपने हाथ से किया जाता है और जो बात अपनी समझ स्वीकार कर लेतो है उसमें पूर्ण निश्चय अवश्य ही हो जाता है और उसी के विदित करने को हम और आप तथा यह एवं वे कहते हैं कि 'हम आप

अब तो आप समझ गए न, कि आप क्या हैं? अब भी समझो तो हम नहीं कह सकते कि आप समझदारी के कौन है हाँ आप ही को उचित होगा कि दमड़ी-छदाम की समझ कि पंसारी के यहाँ से मोल लाइए, फिर आप ही समझ लगिएगा कि आप "कौन हैं? कहाँ के हैं? कौन के हैं?" य यह भी न हो सके और लेख पढ़ के आपे से बाहर हो जा तो हमारा क्या अपराध है? हम केवल जी में कह ले "शाबाश! आप न समझो तो आपों (अपने) को के (क्या पड़ी है[1] (है)।" ऐं! अब भी नहीं समझे? वाह रे आप

(निबंधनवनीत से) —प० प्रतापनारायण मि

पाठ-सहायक

द्योतनार्थ—प्रकाशनार्थ, पानीदार—आत्मसम्मानी, अधो गामी—अधः—नीचे + गामी—जानेवाला, ऐसीतैसी—सर्वना युग्म—कुत्सित अर्थसूचक, आप्त पुरुष—विद्वान्, धर्मात्मा ए विश्वस्त पुरुष, अथच—और, ध्वनि—गूढभाव, दूसरा अर्थ।

अभ्यास

१—यहाँ आप शब्द की व्याख्या में क्या कहा गया है स्पष्टरूप से लिखो।

२—अर्थ लिखकर प्रयोग करो और ऐसे ही अन्य मुहावरे लिखो।

१—मुँह पर धरना, २—हुज़ूर की मुलाज़िमत में अब ने इस्तेफ़ा दे दिया। ३—पानी उतरना। ४—मुँह पर लाना। ५. पानी पानी हो जाना।

१—अपने को क्या पड़ी है।

३—यहाँ किस शैली की भाषा है, इसकी विशेषता स्पष्ट रूप से दिखलाओ।

४—टिप्पणियाँ लिखो और खड़ी बोली में रूपांतरित करो।
सहजतया, हुई है, रही टी सो, हमी कौन के, मूँड गोड़।

५—वाक्य-विश्लेषण कर साराश लिखो—
"हिंदी की कविता में······तू ही कारण है।" (पृष्ठ ४८)

६—इसी के अधोलिखित शब्दों की पद-व्याख्या करो—
इसके, पर, यह, किसी, यह, कोई।

७—इस पाठ से जोड़ेवाले शब्द चुनो और उनके ही जैसे अन्य जोड़े-वाले शब्द लिखकर प्रयोग करो।

८—बताओ कैसी क्रियाएँ हैं—इनके रूप संदिग्धभूत, आसन्न-भूत और विधि में लिखो—
समझने-समझाने, समझ लीजिए, बहि जायँ, बिकायँ, उतरिगा।

९—विशेषण या अन्य संज्ञाएँ बनाकर प्रयुक्त करो—
बनाना, उठना, आपस, आप, अवश्य।

१०—किन अर्थों मे आए हैं, इन्हें भिन्न भिन्न अर्थों में प्रयुक्त करो—
मान, बार, पर, पानी, बात।

११—अंतर बताओ और प्रयोग से समझाओ—
आप—आपा, खींच-खाँच, आत्मा—आतम, धुनि—ध्वनि।

---

(८) शिकागो का रविवार

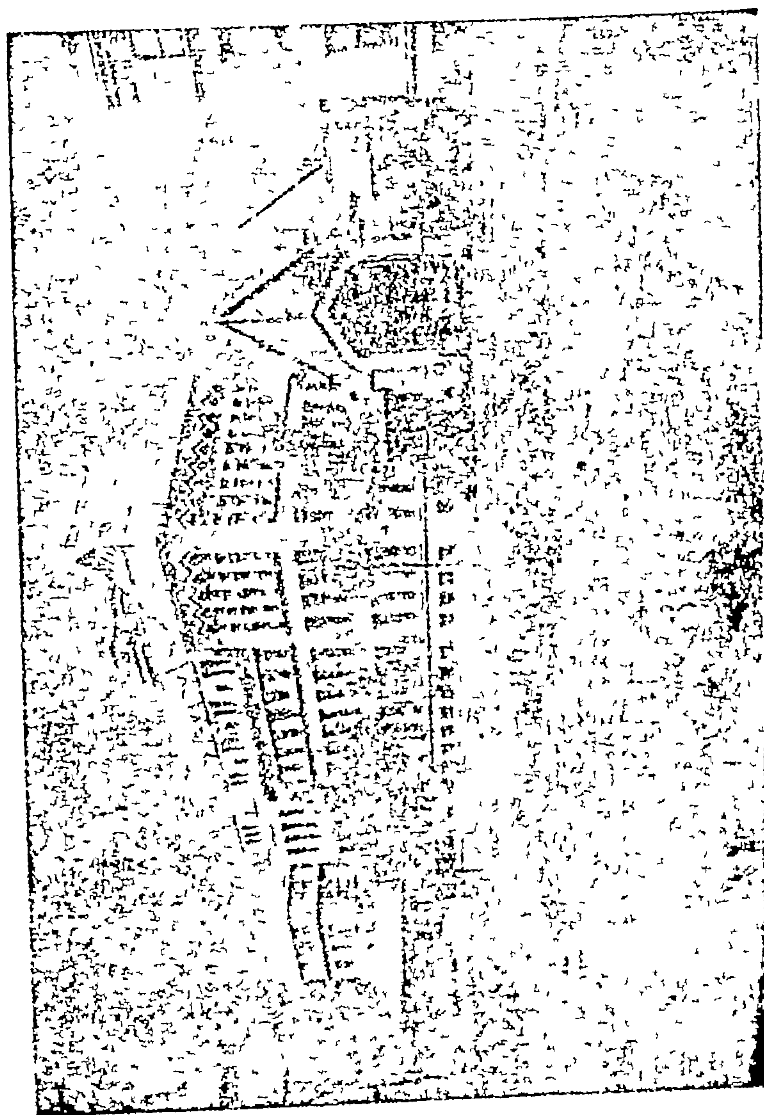
शिकागो संसार के प्रसिद्ध नगरो में से एक है। जगद्विख्यात धनी जान-डी-राकफेलर-द्वारा स्थापित विश्वविद्यालय यहाँ पर है। अमेरिका के बड़े बड़े कारखाने, पुतलीघर भी यहीं पर हैं। इन कारखानो मे हर एक कौम के लोग काम करते हैं। इतने बड़े प्रसिद्ध नगर के लोग अपने अवकाश का समय कैसे काटते हैं? वे अपना दिल कैसे बहलाते हैं? इस नगरी मे देखने लायक क्या है? इन प्रश्नो का उत्तर हम इस लेख मे देते हैं। आइए, आपको शिकागो की सैर करावे, इसके अजीब अजीब दृश्य दिखावें, और आपको बतलावें कि इस प्रसिद्ध नगरी मे कौन कौन स्थान दर्शनीय हैं। साथ ही हम इस नगर के निवासियों की रहन-सहन का ब्योरा भी देते जायँगे, जिससे आपको अमेरिका के इस प्रांतवालों की जीवनचर्या के विषय मे भी कुछ ज्ञान हो जाय। इस काम के लिये हमने रविवार का दिन चुना है। उसी की महिमा का हम इस लेख में वर्णन करेंगे। इससे हमारा अभीष्ट भी सिद्ध हो जायगा और आपको यह भी मालूम हो जायगा कि शिकागो के निवासी रविवार की छुट्टी किस तरह मानते हैं।

रविवार छुट्टी का दिन है। भारतवर्ष में छोटे छोटे बच्चे भी, जो स्कूल में पढ़ते हैं, यह बात जानते हैं। एशिया और

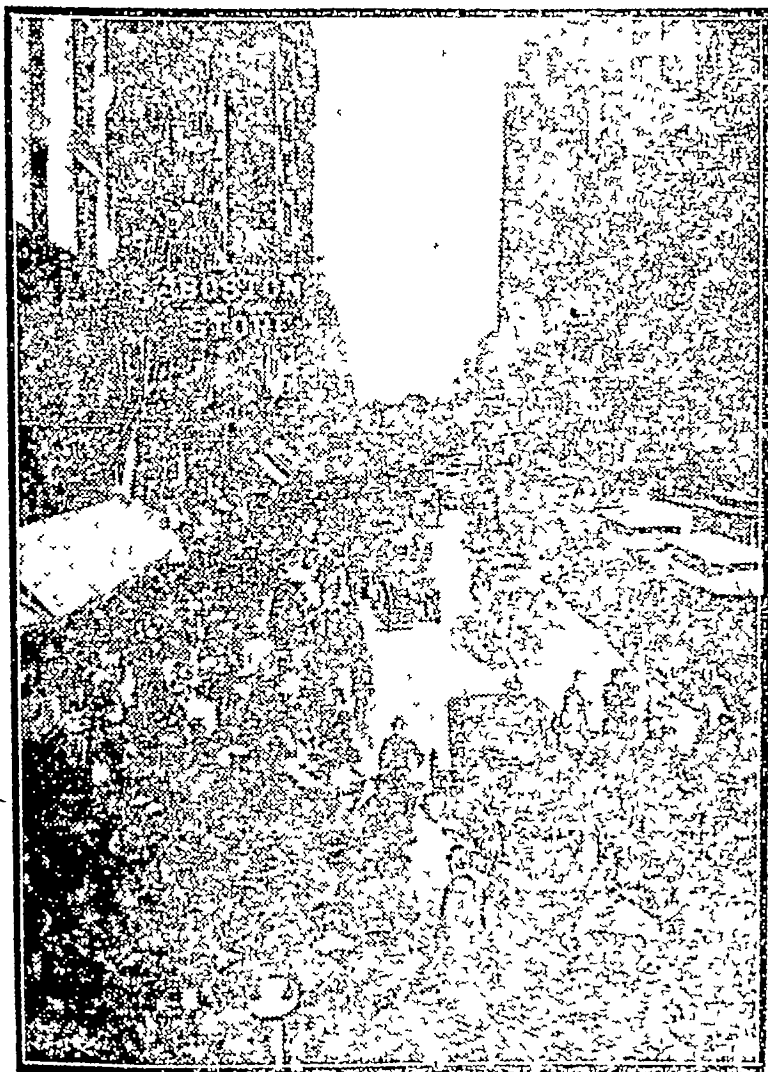
अफ़्रीका में जहाँ जहाँ ईसाई लोगों का राज्य है, सब कहीं स्कूलों और दफ़्तरों मे रविवार को छुट्टी रहती है। परंतु रविवार की छुट्टी किस तरह माननी चाहिए, यह बात ईसाई-धर्मावलंबियों के बीच रहे बिना अच्छी तरह नहीं अनुभव की जा सकती।

ईसाई-धर्म्म मे रविवार को काम करना मना है। इसलिये शिकागो में सब दुकानें, पुस्तकालय, कारख़ाने आदि इस दिन बंद रहते हैं। क्या निर्धन, क्या धनवान्, क्या नौकर, क्या स्वामी, क्या बालक, क्या वृद्ध, क्या स्त्री, क्या पुरुष सबके लिये आज छुट्टी है। १०½ या ११ बजे नियत समय पर प्रातःकाल प्रायः सब लोग अपने अपने गिरिजाघरों मे जाते हुए दिखाई देते हैं। वहाँ ईश्वराराधना के बाद घर लौट कर वे भोजन करते हैं। फिर कुछ देर आराम करके सैर को निकलते हैं।

शिकागो बहुत बड़ा शहर है। संसार के बड़े बड़े शहरों मे इसका तीसरा नंबर है। यहाँ एक "फ़ील्ड म्यूज़ियम" अर्थात् अजायबघर है। यह मिशिगन झील के किनारे शिकागो विश्वविद्यालय से थोड़ी ही दूर पर है। रविवार को सवेरे नौ बजे से शाम के पाँच बजे तक, सबको यहाँ मुफ़्त सैर करने की आज्ञा है। इसलिये इस दिन यहाँ बड़ी भीड़ रहती है। आठ नौ बरस के बालक-बालिकाएँ ऐसे ही स्थानों से विद्या का आरंभ करते हैं, क्योंकि यहाँ पर संसार की उन सब अद्भुत वस्तुओं का संग्रह है, जो शिकागो के प्रसिद्ध सांसारिक मेले मे इकट्ठा की गई थीं। यहाँ यह बात यथाक्रम दिखाई गई है कि पृथ्वी के



शिकागो-विश्व-विद्यालय का एक अंश



शिकागो का एक बाज़ार

ऊपर प्राणियों का जीवन, प्राकृतिक नियमो के अनुसार, किस प्रकार वर्तमान अवस्था को पहुँचा है। भूगर्भविद्या-संबंधी पदार्थों को भिन्न भिन्न कमरो में दरजे-बदरजे रखकर उनका क्रमिक-विकास अच्छी तरह बतलाया गया है। यहाँ पर स्पष्ट रूप से ज्ञान हो जाता है कि उत्तरीय अमरीका के हरिण किस प्रकार भिन्न भिन्न चारो ऋतुओ में अपना रंग-ढंग बदलते हैं। किस प्रकार प्रकृति माता बर्फ के दिनों में उनको भोजन देती है। उत्तरीय ध्रुव मे रहनेवाले रीछों के बर्फ के भीतर बने हुए घर क्या हो अच्छो तरह दिखाए गए हैं।

यहाँ यह बात प्रत्यक्ष मालूम हो जाती है कि अमरीका के प्राचीन निवासी किन देवी-देवताओं की पूजा करते थे, कैसे घरों मे रहा करते थे, किस प्रकार किन चीज़ों की मदद से पहनने के वस्त्र बनाते थे। उनकी नौकाएँ, उनके खाने-पाने का सामान, उनके देवालय, उनके युद्ध के शस्त्र, सब चीज़ें बहुत ही अच्छी तरह दिखाई गई हैं।

इस अजायबघर के मध्य में महात्मा कोलंबस की एक दीर्घ-काय मूर्त्ति विराजमान है। इस जिनोआ-निवासी को देखकर दर्शक के मन मे भाँति भाँति के विचार उत्पन्न होने लगते हैं और एक अद्भुत दृश्य आँखों के सामने घूम जाता है। पुराने अमेरिका और आज के अमेरिका मे कितना अंतर है? वे यहाँ के प्राचीन निवासी कहाँ गए? पिछली तीन शताब्दियों मे यहाँ की भूमि ने कैसा रूप बदला है? कहाँ योरप? कहाँ अमेरिका?

हज़ारों कोस का अंतर! भारतवर्ष की तलाश में एक पुरुष भूल से इधर को आ निकला, उसका आना ही इन सब परिवर्तनों का मूल कारण हुआ।

इस अजायबघर में वनस्पति-विद्या, रसायन-विद्या, जंतु-विद्या, नर-शरीर-विद्या आदि भिन्न भिन्न विद्याओं के संबंध की सामग्री भी विद्यमान है। "एक पंथ दो काज" छुट्टी का दिन है; सैर भी कीजिए और कुछ सीखिए भी। उन्नति के कैसे अच्छे मौके यहाँ के निवासियों को दिए जाते हैं। वे बालकपन से ही खेल के बहाने यहाँ इतनी योग्यता प्राप्त कर लेते हैं जो हमारे देश में दस बरस तक स्कूल में पढ़ने से भी नहीं होती।

अजायबघर से बाहर निकल कर देखिए। झील के किनारे किनारे सड़क बनी हुई है। बेंचें रक्खी हुई हैं। वहाँ स्त्री, पुरुष, बालक आनंद से बैठे हैं और हँस-खेल रहे हैं। लोग घूमते और वार्तालाप करते हुए क्या ही भले मालूम होते हैं। मिशिगन झील भी उनके भिन्न भिन्न भावों को देखकर प्रसन्न मालूम होती है। वह अपने स्वच्छ शीतल पवन के झोंकों से उन्हें आशीर्वाद-सा दे रही है। जल की तरंगें छोटे छोटे बालकों को देखकर उनसे मिलने के लिये, बड़े आह्लाद से आगे बढ़ती हैं। परंतु तत्काल ही यह सोचकर कि शायद कुछ बे-अदबी न हुई हो पीछे हट जाती हैं। इस समय भगवान् सूर्य्य अपने दिन के कार्य्य को पूर्ण कर पश्चिम की ओर गमन करते हैं।

इस अजायबघर के सिवा और भो बहुत-से स्थान शिकागो-निवासियों को रविवार मनाने के लिये हैं। कितने ही उद्यान ऐसे हैं जहाँ "पियानो" बाजे तथा मन बहलाने के और अनेक सामान रक्खे रहते हैं। वहाँ आकर लोग बैठते हैं, संगीत सुनते हैं और आनंद-मग्न होकर घर जाते हैं।

यहाँ एक उद्यान है, जिसका नाम हंबोल्ड पार्क है। इसमें नहर के ढंग पर जल के बड़े बड़े और लंबे कुंड हैं। उनमें जल भरा रहता है। छोटी छोटी नावे पानी पर तैरा करती हैं। ये नावें खेल के लिये हैं। ग्रीष्म-काल में यहाँ नावों की दौड़ होती है। रविवार के दिन इन उद्यानों का दृश्य बहुत ही मनोहर हो जाता है। नवयुवक नौकाएँ खेते हुए हँसते, खेलते, गाते, जीवन का आनंद लेते हैं। स्त्रियों की यहाँ बड़ी प्रतिष्ठा है। कोई बहुत ही पतित पुरुष होगा जो उनके साथ नीच व्यवहार करेगा। ऐसे पुरुष के लिये क़ानून में बड़े भारी दंड का विधान है। प्रायः सभी उद्यानों मे ऐसे जल-कुंड हैं। जो स्थान जिसके निकट होता है वह वहां जाकर रविवार को आनंद मनाता है।

कोई शायद पूछे कि क्या और रोज़ वहाँ जाना मना है? ऐसा नहीं है। परंतु कारण यह है कि अधिकांश लोगों को सिवा रविवार के और रोज़ छुट्टी ही नहीं मिलती। इसलिये रविवार को ही इन उद्यानों में लोग एकत्र होते हैं। यह बात ग्रीष्म-ऋतु की है। जाड़े में जब इन कुंडों का पानी जम जाता

है तब वहाँ पर लोग "स्केटिंग" करते हैं। स्केटिंग एक प्रकार का खेल है। हर साल दिसंबर में स्केटिंग का समय होता है, बेहद जाड़ा पड़ता है, पर बालक-बालिकाएँ इन स्थानों में नाचती हुई दिखाई देती हैं।

लिंकन-उद्यान बहुत प्रसिद्ध है। इसमें अमेरिका के विख्यात योद्धा वीर-वर ग्रांट की मूर्ति है। अश्वारूढ़ ग्रांट इस देश के इतिहास के ज्ञाता को एक भयंकर युद्ध का स्मरण कराता है।

वह युद्ध गुलामों के व्यापार को बन्द कराने के लिये आपस में हुआ था। अमेरिका के उत्तर के लोग चाहते थे कि गुलामों का व्यापार बंद हो जाय। उनका सिद्धांत था—"स्वतंत्रता का स्वाभाविक नियमों में सबका हक़ एक-सा है। वे न चाहते थे कि अमेरिका जैसे स्वतंत्र देश में मनुष्य भेड़-बकरियों की तरह बिकें। इस सत्य सिद्धांत की रक्षा के लिये एक लोमहर्षण युद्ध उत्तर और दक्षिण के निवासियों में हुआ और परिणाम में सत्य की जय हुई। शूर वीर ग्रांट इस युद्ध में उत्तरवालों की ओर से सेनापति थे। वे काले हबशियों को वैसा ही चाहते थे जैसा गोरे चमड़ेवाले अमेरिका के निवासियों को।

इस महात्मा का स्मारक-चिह्न दर्शक को एक नया जीवन प्रदान करता है। वह उसे सूचना देता है कि किसी से घृणा मत करो, क्या काला, क्या गोरा, सब एक ही पिता के पुत्र हैं। इस उद्यान के एक भाग में भिन्न भिन्न प्रकार के पौधे रक्खे हुए हैं। जो वृक्ष जिस तापमान में जी सकता है उसी के

अनुसार वहाँ उसे उष्णता पहुँचाई गई है और उसकी रक्षा की गई है। उष्ण देशों के कई वृक्ष वहाँ देखने में आते हैं। दर्शक को वनस्पति-विद्या-संबंधी बहुत-सी बातें यहाँ मालूम हो जाती हैं।

उद्यानों के सिवा बहुत-से और भी स्थान, लोगों के बैठने-उठने, हँसने-खेलने के लिये हैं। शिकागो बहुत बड़ा नगर है। इससे नगर-निवासियों के आराम और शुद्ध पवन की प्राप्ति के लिये, बीच बीच गलियों में "बुलवार्डज" नामक विहार-स्थल हैं। यहाँ की गलियाँ अपने देशों की जैसी नहीं हैं। गलियाँ क्या एक बाज़ार हैं। पत्थर के मकानों के आगे दोनों किनारों पर, पाँच फुट के क़रीब सड़क से ऊँचा रास्ता, लोगों के चलने के लिये बना हुआ है। बीच की सड़क गाड़ी, घोड़े, मोटर आदि के लिये है। खुले मकानों और चौड़ी सड़कों के कोनों पर भी हवा के साफ़ रखने और ग़रीब आदमियों के मनोरंजन तथा लाभ के लिये थोड़ी थोड़ी दूर पर विहार-वाटिकाएँ हैं, जहाँ बैठने के लिये बेंचें रक्खी रहती हैं।

काम से थके हुए स्त्री-पुरुष रोज़ सायंकाल यहाँ दिखाई देते हैं, क्योंकि और स्थानों में गाने, बजाने और जल-विहार आदि के लिये थोड़ा-बहुत ख़र्च करना पड़ता है जो थोड़ी आमदनी के लोग नहीं कर सकते। उनके लिये ऐसे स्थानों, उद्यानों और अजायबघरों में घूमने की स्वतंत्रता है। यत्न यह किया गया है कि सबको इस स्वतंत्र देश में आनंद प्राप्त करने का अवसर मिले। यहाँ जो धन व्यय किया जाता है वह,

शारीरिक और मानसिक दोनो प्रकार की उन्नति के लिये, किया जाता है।

यह तो हुई दिन की बात, अब रात की सुनिए। यहाँ बहुत-से नाटकघर, प्रदर्शनियाँ और समाज हैं, जहाँ अपनी अपनी रुचि के अनुसार लोग-रात को जाते हैं। शिकागो मे लोग अक्सर रात को गिरजो मे जाते हैं। रात को भी वहाँ उपदेश, गायन और हरिकीर्तन होता है। यहाँ एक जगह "ह्वाइट सिटो" श्वेत नगर है। बहुत-से लोग वहाँ जाते हैं। इस जगह को श्वेत नगर इसलिये कहते हैं कि यहाँ बिजली की शुभ्र रोशनी होती है, जिससे रात को भी दिन ही-सा रहता है, इसके विशाल द्वार पर बड़े मोटे मोटे बिजली के प्रकाश के अक्षरो मे "दि ह्वाइट सिटो" लिखा हुआ है।

बिजली की महिमा यहाँ खूब ही देखने को मिलती है। स्थान स्थान पर प्रकाशमय रंग-बिरंगे अक्षर-चित्र बने हुए हैं, जो मिनट मिनट मे रंग बदलते हैं। इस श्वेत नगर के भीतर अनेक मनोरंजक स्थान हैं। कहो पर गाना हो रहा है, कहो पर बडे 'हालो' मे नाच हो रहा है, कहो "सरकस" का तमाशा है। दुनिया भर के तमाशा करनेवाले यहाँ आते-जाते हैं। गरमी के दिनों मे वे, तीन ही चार मास मे, हजारो रुपए कमा लेते हैं। यह स्थान एक कंपनी का है। उसके नौकर सारी दुनिया मे तमाशा करनेवालों को लाने के लिये घूमा करते हैं। भारतवर्ष के यदि दो तीन अच्छे अच्छे पहलवान,

किसी देशी कंपनी के साथ, अमेरिका में आवें तो हज़ारों रुपए कमाकर ले जायँ। हमारे देश मे अभी लोगों ने रुपया पैदा करने का ढंग नहीं सीखा।

एक साधारण मनुष्य इँगलिस्तान से आकर, हिंदुस्तान में विज्ञापनों-द्वारा प्रसिद्धि प्राप्त करके, लाखों बटोर कर ले जाता है, परंतु हमारे स्वदेशी कारीगर, पहलवान, बाज़ीगर, आदि सभी इस ओर आने का साहस ही नहीं करते। अमेरिका मे कुश्ती का शौक़ बढ़ रहा है। यदि इस समय कोई पहलवान थोड़ा-सा रुपया ख़र्च करके इधर आवे और किसी अच्छी कंपनी की मारफ़त कुश्ती हो, तो लाखों रुपये के वारे-न्यारे हो जायँ।

इस श्वेत नगर में रविवार को बड़ा भारी मेला होता है। गाड़ियाँ स्त्री-पुरुषो से लदी हुई जाती हैं। हज़ारों दर्शक इकट्ठे होते हैं। रात को ८ बजे से ११ या १२ बजे तक मेला लगा रहता है। यह स्थान केवल गर्मियों मे खुलता है, क्योंकि जाड़ों में शीत के कारण यहाँ कोई नहीं आता। शीत-ऋतु के लिये नगर के भीतर और अनेक स्थान हैं, जहाँ और तरह के मनोरंजक खेल होते हैं।

रविवार का दिन इस नगर मे लोग इसी तरह व्यतीत करते हैं। अब यहाँवालों की जीवन-चर्य्या का मिलान यदि हम भारतवर्ष से करते हैं तो कितना बड़ा अंतर पाते हैं। उन तमाशों या नाटकों की बात जाने दीजिए, जिनको हमारे बहुत-से

पाठक शायद अच्छा न समझें, पर और ऐसे कितने ही मनोरंजक या शिक्षा-प्रद खेल-तमाशे हैं जिनका हमारे स्वदेश-भाइयों को शौक़ है ? वे अपने अवकाश को, अपनी छुट्टियों को किस तरह बिताते हैं ? भंग पीकर, ताश खेलकर, पतंग उडाकर और व्यर्थ के बकवाद में लिप्त रह कर, वक़्त की वे क़ीमत ही नहीं जानते। यद्यपि कुछ पढ़े-लिखे लोग ऐसे हैं जो इन बुराइयों से बचे हुए हैं, परन्तु वे तीस करोड़ की जन-संख्या मे दाल मे नमक के बराबर भी नहीं। जहाँ के निवासी सैकड़े पीछे आठ से भी कम साक्षर हैं उन्हे दुर्व्यसनों मे डूबने से भगवान् ही बचावे।

(अमेरिका-दिग्दर्शन से) —स्वामी सत्यदेव

पाठ-सहायक

क्रमिक—यथाक्रम, दीर्घकाय—देखो समास—बड़ी देहवाली. उद्यान—वाटिका, सहाध्यायी—सह = साथ + अध्यायी = अध्ययन करनेवाले—सहपाठी।

अभ्यास

१—शिकागो में रविवार कैसे व्यतीत किया जाता है ?

२—तुम रविवार को क्या करते हो ? सक्षेप मे लिखो।

३—किस प्रकार अमेरिका में मनोरजन के साथ ही ज्ञानोपार्जन भी किया जा सकता है ?

४—वहाँ रुपया कमाना कैसे लोग जानते हैं ? और कैसे कैसे साधन वहाँ पाए जाते हैं ?

५—इस पाठ की भाषा कैसी है, और क्यों ?

६—नए शब्द बनाकर प्रयुक्त करो—

बराबर, बकवाद, बाज़ीगर, नगर, बड़ा।

७—अन्तिम अनुच्छेद को संक्षिप्त रूप में लिखो।

८—इस पाठ से तुम्हें क्या शिक्षाएँ मिलती हैं?

९—इस पाठ के आधार पर तुम अपने यहाँ छुट्टियों के व्यतीत करने की कैसी व्यवस्था कर सकते हो और कैसी की जानी चाहिए?

१०—प्रथम अनुच्छेद की क्रियाएँ चुनो और उनकी पद-व्याख्या करो।

११—इस पाठ का सारांश निकाल कर उसे अपनी ओर से एक पत्र के रूप में प्रवधित करो।

संकेत—

१—शिकागो आदि स्थान नक़शे में दिखाना।

२—भिन्न भिन्न प्रकार की विद्याओं का परिचय देना।

---

(९) काली-दमन

प्रसून यों हो न मिलिंद-वृंद को,
विमोहता औ करता प्रलुब्ध है।
वरंच प्यारा उसका सुगंध हो,
उसे बनाता बहु-प्रीति-पात्र है ॥१॥

विचित्र ऐसे गुण हैं ब्रजेंदु मे,
स्वभाव ऐसा उनका अपूर्व है।
निबद्ध-सी है जिनमे नितांत हो,
ब्रजानुरागी जन की विमुग्धता ॥२॥

स्वरूप होता जिसका न भव्य है,
न वाक्य होते जिसके मनोज्ञ हैं।
अतीव प्यारा बनता सदैव है,
मनुष्य सो भी गुण के प्रभाव से ॥३॥

अनूप जैसा घनश्याम-रूप है,
तथैव वाणी उनकी रसाल है।
निकेत वे हैं गुण के, विनीत हैं,
विशेष होगा उनमे न प्रीति क्यों ॥४॥

सरोज है दिव्य सुगंध से भरा,
नृलोक मे सौरभवान स्वर्ण है।

सुपुष्प से सज्जित पारिजात है,
मयंक है श्याम विना कलंक का ॥५॥

प्रवाहिता जो कमनीय धार है,
कलिंदजा की भवदीय सामने।
विदूपिता सो पहले अतीव थी,
विनाशकारी विष-कालिनाग से ॥६॥

जहाँ सुक्रोड़ा-मयि युक्त धार है,
वहीं बड़ा विस्तृत एक कुंड है।
सदा उसी में रहता भुजंग था,
भुजंगिनी संग लिए सहस्रशः ॥७॥

मुहुर्मुहुः[१] श्वास समूह सर्प से,
कलिंदजा का कँपता प्रवाह था।
असंख्य फूत्कार प्रभाव से सदा,
विषाक्त होता सरिता-सदंबु था ॥८॥

दिखा रहा संमुख जो कदंब है,
कहो इसे छोड़ न एक वृक्ष था।
कलिंदजा-कूल न एक कोस लौं,
हरा भरा था न प्रशंसनीय था ॥९॥

१—(संस्कृत) वारम्बार।

कभी यहाँ का भ्रम या प्रमाद से,
कदंबु पोता यदि था विहग भी।
नितांत तो व्याकुल औ विपन्न हो,
स्वप्राण को सो तजता तुरंत था ॥१०॥

रही न जाने किस काल से लगी,
व्रजापगा में यह व्याधि-दुर्भगा।
परंतु वीरेंद्र मुकुंद ने उसे,
नसा दिया स्वल्प-कृपा-कटाक्ष से ॥११॥

स्वजाति की देख अतीव दुर्दशा,
विगर्हणा देख मनुष्य-मात्र की।
विचार के प्राणि-समूह-कष्ट को,
हुए समुत्तेजित वीर-केशरी ॥१२॥

हितैषणा से निज-जन्म-भूमि की,
अपार आवेश हुआ व्रजेश को।
बनी महा बंक गँठी हुई भवें,
नितांत-विस्फारित नेत्र हो गए ॥१३॥

इसी घड़ी निश्चित श्याम ने किया,
सशंकता त्याग अशंक-चित्त से।
अवश्य निर्वासन हो विधेय है,
भुजंग का भानु-कुमारि-अंक से ॥१४॥

अतः करूँगा यह कार्य्य मैं स्वयं,
स्वहस्त मे प्राण स्वकीय को लिए।
स्वजाति औ जन्म-धरा निमित्त मैं,
न भीत हूँगा विष-काल-सर्प से ॥१५॥

प्रवाह होते तक शेष-श्वास के,
स-रक्त होते तक एक भी शिरा[1]।
स-शक्त होते तक एक लोम के,
किया करूँगा हित सर्व भूत का ॥१६॥

निदान न्यारी निज-धारणा बँधे,
व्रजेंदु आए दिन दूसरे यहाँ।
दिनेश-आभा इस काल भूमि को,
बना रही थी महती प्रभावती ॥१७॥

विलोक सानंद सु-व्योम-मेदिनी,
खिले हुए पंकज पुष्पिता लता।
अतीव उल्लासित हो स्व-वेणु ले,
कदंब के ऊपर श्याम जा चढ़े ॥१८॥

कँपा सशाखा बहु-पुष्प को गिरा,
पुनः पड़े कूद प्रसिद्ध कुंड में।
हुआ समुद्भिन्न प्रवाह वारि का,
प्रकंपकारी रव व्योम में उठा ॥१९॥

१—सं०—नस।

अपार कोलाहल ग्राम में मचा,
विषाद फैला ब्रज-सद्म-सद्म में।
ब्रजेश हो व्यस्त समस्त दौड़ते,
खड़े हुए आकर उक्त कुंड पै॥२०॥

द्वि-दंड में ही जनता अपार से,
तमारिजा का तट पूर्ण हो गया।
प्रकंपिता हो वन-मेदिनी उठी,
विषादितो के बहु-आर्त-नाद से॥२१॥

व्यतीत यों हो घटिका कई हुई,
पुनः स-हिल्लोल हुई पतंगजा।
प्रवाह उद्वेदित अंत मे हुआ,
दिखा महा अद्भुत दृश्य सामने॥२२॥

कई फनों का अति ही भयावना,
महा-कदाकार असेत-शैल-सा।
बड़ा वली पन्नग एक अंक से,
कलिंदजा के कढ़ता दिखा पड़ा॥२३॥

विभीषणाकार, अनेक पन्नगी,
कई बड़े पन्नग, नाग साथ ही।
विदार के पत्त पतग-पुत्रिका,
प्रमत्त-से थे कढ़ते शनैः शनैः॥२४॥

फणीश-शीशोपरि राजती रही,
सु-मूर्ति शोभामयि श्री मुकुंद की।
विकीर्ण-कारी कल-ज्योति चक्षु थे,
अतीव-उत्फुल्ल-मुखारविंद था ॥२५॥

विचित्र थी शीश-किरीट की प्रभा,
कसी हुई थी कटि में सुकाछनी।
दुकूल से शोभित कांत कंध था,
विलंबिता थी बन-माल ग्रीव में ॥२६॥

अहीश को नाथ विचित्र रीति से,
स्वहस्त में थे वर डोर को लिए।
बजा रहे थे मुरली मुहुर्मुहुः,
प्रबोधिनी, मुग्धकरी, विमोहिनी ॥२७॥

समस्त सर्पों सँग श्याम ज्यों कढ़े,
कलिंद की नंदिनि के सुअंक से।
खड़े किनारे जितने मनुष्य थे,
सभी महा शंकित-भीत हो उठे ॥२८॥

विलोक होती जनता भयातुरा,
मुकुंद ने एक विभिन्न मार्ग से।
चढ़ा किनारे पर सर्प-यूथ को,
उन्हें बढ़ाया वन ओर वेग से ॥२९॥

व्रजेंदु के अद्भुत-वेणु-नाद से,
सतर्क-संचालन से सु-युक्ति से।
हुए वशी-भूत समस्त सर्प थे,
न अल्प होते प्रतिकूल थे कभी ॥३०॥

अगम्य अत्यंत समीप शैल के,
जहाँ बड़ा कानन था व्रजेंद्र ने।
कुटुंब के साथ वहाँ अहीश को,
स-दर्प दे के व्र: यातना तजा ॥३१॥

न नाग काली तब से दिखा पड़ा
हुई तभी से यमुनातिनिर्मला।
समोद लौटे सब लोग सद्म को,
प्रमोद सारे व्रज-बीच छा गया ॥३२॥

—अयोध्यासिंह उपाध्याय

(प्रियप्रवास से)

पाठ-सहायक

मिलिंद—(मलिंद) भौरा, मनोज्ञ—सुंदर, पारिजात—देव-कानन का सर्वश्रेष्ठ पेड़, सहस्रशः—हज़ारों—इसी प्रकार अनेकशः—धा लगा कर भी ऐसे शब्द बनाते हैं जैसे सहस्रधा, शतधा, मुहुर्मुहुः—

बारम्बार, विपाक्त—विषैला, कर्दबु—(कत् + अबु) गंदा पानी, दुर्भंगा—बुरी, विगर्हणा—निंदा, तिरस्कार, बम्फारित—फाड़े हुए, भानुकुमारि—यमुना, मेदिनी पृथ्वी उद्भेदित—फटना, ग्रीव—गरदन, विभीष—भयप्रद, रावणायधु।

अभ्यास

१—इस पाठ से वे पंक्तियाँ चुनकर याद करो जिनमें कुछ सिद्धांत कहे गए हैं?

२—छं० नं० ४ और ५ का सान्वय अर्थ समझा कर लिखो।

३—श्रीकृष्ण की तुलना यहाँ किन विचित्र पदार्थों से की गई है उनकी विशेषताएँ स्पष्टरूप से प्रकट करो।

४—श्रीकृष्ण में कौन कौन-से विशेष आकर्षक गुण थे, क्यों वे सबको प्यारे लगते थे?

५—कालीसर्प का वर्णन यहाँ कैसा किया गया है? उसका दमन कृष्ण ने क्यों किया था?

६—श्रीकृष्ण के रूप-सौंदर्य का कैसा चित्रण किया गया है?

७—अर्थ बताओ और प्रयोग करो—

विभीषणाकार, भयातुरा, समुद्विग्न, तमारिजा, विदूषिता, सौरभवान।

८—बताओ कहाँ किन कारकों की विभक्तियों का बलात् लोप किया गया है? उनकी पूर्ति करो।

९—सविग्रह समास बताओ—

व्रजानुरागी जन, व्रजापगा स्वल्प-कृपा-कटाक्ष, फणीश-शीशो परि, अतीव उत्फुल्ल मुखारविंद।

१०—श्रीकृष्ण और यमुना जी के पर्यायवाचक शब्द चुनो, साथ ही विपर्यायी शब्द बताओ—

उत्फुल्ल, प्रीतिपात्र, सुगध, रसाल ।

११—भिन्न भिन्न अर्थ बताकर उदाहरण दो—

रसाल, वाणी, काल, घड़ी, भीत, कूल ।

१२—अपभ्रश रूप लिखकर प्रयुक्त करो—

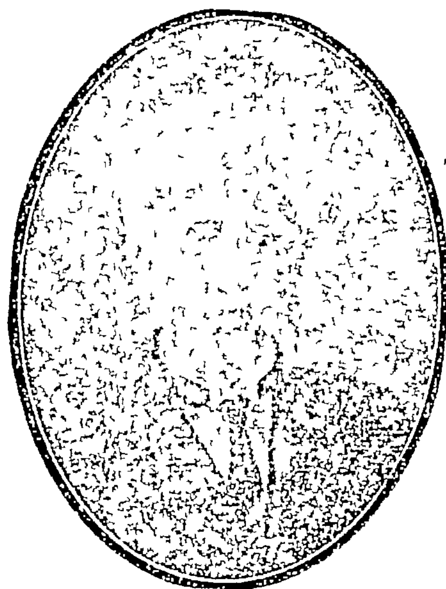
मत्त, फूत्कार, हिल्लोल, वक ।

संकेत—

१—श्रीकृष्ण के सबध मे ऐसी ही अन्य कथाएँ बताना ।

(१०) सर चंद्रशेखर वेंकट रमन

रमन महोदय का जन्म ७ नवंबर, सन् १८८८ ई० में, ट्रिचनापल्ली मे एक साधारण वंश में हुआ था। आपके पिता श्री चंद्रशेखर ऐयर वहीं किसी स्कूल के शिक्षक थे। रमन महोदय के जन्म के कुछ ही दिनों बाद वाल्टेयर के एक कालेज मे आपको गणित के प्रोफ़ेसर का स्थान मिल गया। श्री चंद्रशेखर ऐयर गणित और भौतिक शास्त्र दोनों के अच्छे पंडित थे और साथ ही साथ गान-विद्या में भी अनुराग रखते थे।



सर सी० वी० रमन

बाल्यावस्था ही से रमन महोदय की वैज्ञानिक प्रतिभा चमक उठी। आपने बी० ए० में भौतिक विज्ञान लिया। लोगों ने आपको इतिहास लेने की राय दी थी, परन्तु तेरह वर्ष के बालक रमन ने इनकार करते हुए कहा कि "मैं वही विषय लूँगा, जिसमें मेरी विशेष अभिरुचि है।" अपनी कक्षा मे रमन सबसे प्रखर-बुद्धि छात्र थे।

बी० ए० का परीक्षा-फल निकला। रमन सर्वप्रथम आए और भौतिक शास्त्र का 'अरनी स्वर्ण-पदक' प्राप्त किया। इसके उपरांत आपने भौतिक शास्त्र में एम० ए० की पढ़ाई प्रारंभ की। एक दिन की बात है कि आपके एक सहपाठी श्री० वी० अप्पाराव को नादशास्त्र के एक प्रयोग मे कुछ संदेह हुआ और उसका निराकरण करने के लिये वे अपने प्रोफ़ेसर जोंस के पास गए। परंतु प्रो० जोंस उस समय उस संदेह का निराकरण न कर सके। श्री रमन महोदय ने उस प्रयोग को स्वयं किया और उस विषय पर लार्ड रेले महोदय के वक्तव्य को पढ़ने के उपरांत उस प्रयोग के करने का एक नवीन तरीक़ा निकाला, जो पुराने तरीके से कहीं अच्छा था। उस नवीन तरीक़े की प्रशंसा स्वयं लार्ड रेले महोदय ने की और बालक रमन के पास बधाई का पत्र भेजा। इस घटना से उत्साहित हो रमन ने उस विषय पर एक गवेषणा-पूर्ण लेख लिखकर लंदन के प्रसिद्ध वैज्ञानिक पत्र "फिलासॉफ़िकल मैगज़ीन" मे भेजा जिसको उसके संपादक ने सहर्ष स्वीकार किया। दूसरे वर्ष एक और लेख जिसका प्रकाश-शास्त्र से संबंध था, लिखकर एक दूसरे पत्र "नेचर" में भेजा। उसे भी उसके संपादक ने सहर्ष स्वीकार कर लिया।

एम० ए० की परीक्षा देने के उपरांत आपकी इच्छा विदेश जाकर अध्ययन करने की हुई। किंतु आपका स्वास्थ्य

बहुत ही खराब था। उसकी परीक्षा करने पर डाक्टरों ने आपको विदेश-यात्रा करने की राय न दी।

उस समय अर्थ-विभाग के अफ़सरों की नियुक्ति एक परीक्षा के द्वारा होती थी। यह परीक्षा बड़ी कठिन समझी जाती थी और भारत-सरकार के द्वारा संचालित होती थी। इस प्रतिद्वंद्विता मे भाग लेने के लिये प्रतिवर्ष भारतवर्ष के चुने-चुने विद्यार्थी कलकत्ते में एकत्र होते थे। श्री रमन ने भी इसी परीक्षा मे शामिल होने का निश्चय किया और अध्ययन करने के लिये आप कलकत्ते आए। बहुत ही अल्पकाल मे उन्हें ऐसे-ऐसे विषयों का अध्ययन करना पड़ा जिनमें उनका तनिक भी चाव न था, जैसे इतिहास, संस्कृत और अर्थशास्त्र।

परीक्षा प्रारंभ होने के कुछ ही दिन पूर्व आपको समाचार मिला कि आपने मद्रास-विश्वविद्यालय की एम० ए० परीक्षा में प्रथम स्थान प्राप्त किया है। यही नहीं, आपने भौतिकशास्त्र में इतने अधिक नंबर प्राप्त किए थे, जितने उनके पूर्व किसी छात्र ने न प्राप्त किए थे। इस सुसंवाद ने श्री रमन के उत्साह को बहुत बढ़ा दिया और आप दुगुने परिश्रम से आगामी परीक्षा की तैयारी मे लग गए। इस बार भी विजयश्री आप ही को प्राप्त हुई। आप उत्तीर्ण छात्रों में सर्व-प्रथम हुए।

इस प्रकार १९ वर्ष की छोटी उम्र में रमन महोदय

भारत-सरकार के अर्थ-विभाग मे डिप्टी डाइरेक्टर जेनरल जैसे उत्तर-दायित्व-पूर्ण पद पर आसीन हुए।

कौन जानता था कि यही उन्नीस वर्ष का बालक एक दिन विदेशों मे जाकर भारत का मस्तक ऊँचा करेगा ? कौन जानता था कि ऐसे पद के पाने के बाद भी बालक रमन विज्ञान की चिंता करेगा ? सबने तो यही सोचा होगा कि रमन की ज़िंदगी अब आराम से बीतेगी और वे अपने अवकाश के दिन शिमला या दार्जिलिंग के शिखरों पर व्यतीत किया करेंगे।

परतु नहीं। रमन उन साधारण पुरुषों में न थे, जिनके जीवन का उद्देश्य ज़िंदगी को खेल-कूद मे बिता देना रहता है। वे तो इन महापुरुषो मे हैं, जिनके जीवन का उद्देश्य सत्य का अन्वेषण करना है।

अस्तु, एकाउंटेंट-जनरल होने पर भी श्रीरमन अपने चिर-सहचर विज्ञान को नहीं भूले। आपकी नियुक्ति कलकत्ते में हुई थी। सर आशुतोष आदि ने विज्ञान की उन्नति के लिये एक संस्था स्थापित की थी। आप इस संस्था के सदस्य हो गए। बहुत शीघ्र आपकी प्रतिभा और विद्वत्ता की छाप वहाँ के लोगो पर पड़ गई और आप उस संस्था की प्रयोगशाला के प्रधान बना दिए गए। अब आपके अवकाश का पूरा समय प्रयोगशाला ही मे व्यतीत होने लगा।

परंतु इसी बीच में आपकी बदली रंगून को हो गई। वहाँ जाने पर भी आपका वैज्ञानिक अध्ययन जारी रहा। मार्च, १९१० ई० मे आपके पिता की मृत्यु होगई।

सन १९११ ई० मे आपकी बदली फिर कलकत्ते को हुई। अब की बार आप तार और पोस्ट-विभाग के डाइरेक्टर जेनरल होकर आए। पुनः आपका काम पूर्ववत जारी हो गया।

सन् १९१५ ई० मे सर आशुतोष ने सर तारकनाथ पालित और डाक्टर रासविहारी घोष की सहायता से कलकत्ते मे साइंस-कालेज की स्थापना की। साथ-ही-साथ 'पालित चेयर' के नाम से भौतिक विज्ञान के लिये एक प्रोफ़ेसर के पद की भी स्थापना हुई। सर आशुतोष ने श्रीयुत रमन को उस पद के लिये सबसे अधिक योग्य पाकर, उनसे उस पद को स्वीकार करने के लिये अनुरोध किया। श्री रमन ने सहर्ष अपनी नौकरी से इस्तीफ़ा दे दिया और वे अपने नए पद पर आरूढ़ हो गए। अब तक आप उसी स्थान को सुशोभित कर रहे हैं।

रमन महोदय का सारा समय अब प्रयोगशाला ही मे बीतने लगा। उस समय से आज तक आपने और आपके छात्रों ने भौतिक शास्त्र के विविध विषयों में कितने ही महत्त्व-पूर्ण आविष्कार किए हैं।

परंतु आपका सबसे महत्त्वपूर्ण आविष्कार प्रकाश-शास्त्र में, हाल ही मे, हुआ है। आपने एक नई किरण का

आविष्कार किया है, जिसका नाम आप ही के नाम पर 'रमनकिरण' पड़ा है। रमन महोदय के प्रधान आविष्कार ध्वनिशास्त्र और प्रकाशशास्त्र मे हुए हैं।

सन् १९२१ ई० मे कलकत्ता-विश्वविद्यालय ने आपको डो० एस-सी० की उपाधि देकर सम्मानित किया। सन् १९२४ ई० में आप विदेश-यात्रा के लिये निकले और योरुप, रूस, अमेरिका आदि देशो में भ्रमण करने के पश्चात् १९२५ ई० मे भारत लौटे। आप जहाँ भी गए, वहाँ आपका पूरा स्वागत हुआ। बड़े-बड़े वैज्ञानिकों ने दिल खोलकर आपकी प्रशंसा की।

१९२९ ई० मे जो वैज्ञानिक-कांग्रेस हुई, उसके आप सभा-पति बनाए गए और सभापति की हैसियत से आपने जो विद्वत्ता-पूर्ण भाषण दिया, उसकी सबने मुक्तकंठ से प्रशंसा की। इसी साल भारत-सरकार-द्वारा आपको 'सर' की उपाधि मिली।

यों तो आपकी प्रशंसा सब वैज्ञानिकों ने की थी; परंतु नोबेल-प्राइज़[1] पाने के कारण अब आपकी गणना संसार के सर्वश्रेष्ठ वैज्ञानिकों मे होने लगी है।

१—मिस्टर नोबेल ने अपनी वह सपत्ति दे दी थी जिसका केवल ब्याज एक वर्ष में डेढ़ लाख रुपया आता है। इसी से एक लाख का पुरस्कार ससार के सबसे बड़े विद्वान् को दिया जाता है। इसकी प्रतियोगिता के लिये कुछ विषय भी—जैसे काव्य साहित्य, विज्ञानादि, उन्होंने निर्धारित कर दिए थे। इसका प्रबंध अब एक समिति करती है। कवींद्र रवीन्द्रनाथ टैगोर को भी यह पुरस्कार मिला था।

(११) हिमालय-दर्शन

प्रकृति-दर्शन के विषय मे जो एक बात स्मरण रखने के योग्य है, वह यह कि हम भ्राति से समझ बैठते हैं कि किसी देश मे भ्रमण करना और उसको देखना एक ही बात है, परंतु यह ठीक नहीं है। दोनो मे बड़ा अंतर है। जिस दृष्टि से स्वामी रामतीर्थ[1] परमहंस ने हिमालय को देखा अथवा रवीद्रनाथ ठाकुर[2] ने अमेरिका को देखा उसी दृष्टि से देखना वास्तविक देखना है। ऐसा देखना सब नहीं देखते। ऐसे महानुभाव अपने देखे हुए स्थानों का जो वर्णन लिखते हैं वह इस कारण मनोहर, सुदर और भावपूर्ण नहीं होता कि उनको बढ़िया भाषा में लिखना आता है, बल्कि वह इसलिये होता है कि उन्होंने उन स्थानों को एक सहृदय की दृष्टि से देखा था।

उन महापुरुषो के किए हुए प्राकृतिक दृश्यो के वर्णन, जिनको हम बहुत बड़े अनुभवी और प्रकृति के प्रेमी समझते हैं, बड़े आनंददायक और चित्ताकर्षक होते हैं। उनके पढ़ने से हमें स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि उनका कैसा रँगीला हृदय था। यहाँ पर कतिपय महानुभावों के किए हुए वर्णनों के कुछ अंश

१—एक प्रसिद्ध तथा सिद्ध महात्मा थे। पहले वे लाहौर के कालेज मे गणित के प्रोफ़ेसर थे, फिर सन्यासी हो गए।

२—विश्व-विख्यात कवि हैं। इन्हें काव्य पर एक लाख का विश्वविख्यात नोबेल पुरस्कार मिला है।

उद्धृत किए जाते हैं। स्वामी रामतीर्थ परमहंस गंगा और हिमालय का वर्णन करते हुए कहते हैं—

"पवित्र गंगा राम[1] के विरह को न सह सकी; मास भर भी न होने पाया था कि उसने राम को फिर अपने पास बुला लिया। सारी स्वाभाविक सभ्यता को भूल कर वह उसके ऊपर हर्ष के अश्रु-कण बरसाने लगी। प्यारी गंगे! गंगोत्तरी में तुम्हारी दिन दिन बढ़ती छवि की छटा और पल पल चंचल कलकल का कौन वर्णन कर सकता है! गोरे गोरे गिरि और भोले भोले देवदार—यही तुम्हारे साथी हैं। उनका सीधा-सच्चा स्वभाव कैसा प्रशंसनीय है। उनकी मधुर मधुर मूर्त्ति तो बस अपूर्व ही है। वह चित्त को उत्तेजित वा उल्लसित करती और मन को दूना करती है। यहाँ पर यह कितना स्पष्ट मालूम होता है कि परमात्मा पत्थरों में सोता है, लताओं में श्वास लेता है, पशुओं में चलता-फिरता है, और मनुष्यों में जीता-जागता है।

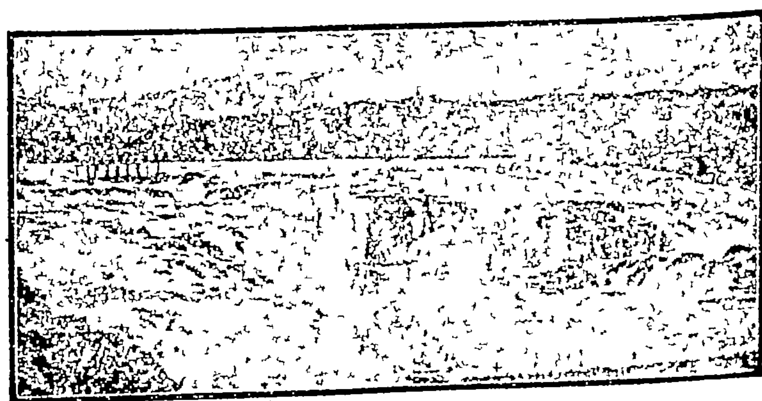
फूलों की वहाँ इतनी घनी उपज है कि सारा मार्ग का मार्ग एक ज़री का खेत-सा दीख पड़ता है। नीले, पीले, बैंगनी भाँति भाँति के फूल जंगल मे भरे पड़े हैं, ढेर के ढेर कमल और वनफशे, गुलेलाल और गुलबहार—सौ सौ वर्णों के एक एक फूल. गुगलधूप, ममीरा, मीठा-तेलिया, सलद, मिश्रा आदि अनेक रुचिर रंगीन लताएँ; केसर, इत्रभू आदि अपार महामधुर सुगंधि से भरे पौदे, भेड़गद्द, तथा तुहिनशीकरों से भरे गर्भवाले गर्वीले

१—रामतीर्थ।

ब्रह्मकमल, इन सबों ने तो गिरिराज को मानों स्वर्गलोक और मृत्युलोक के स्वामी का प्रमोदवन ही बना दिया है।

चारों ओर सुंदरता ही सुंदरता बरस रही है। जिधर देखो उधर मरुद्गण निडर होकर खेल रहे हैं। जगह जगह पर सुगंध के झकोरे पवन के प्रवाह पर लहरें लेते हुए राम को ऐसे लग रहे हैं जैसे मधुर, मनोहर, आनंददायक गान। इन बड़े बड़े विराट् पहाड़ों की चोटियों पर ये सुंदर सुंदर खेत ऐसे बिछे हुए-से हैं जैसे कामदार क़ालीन हों। वन-देवता! यह तुम्हारी भोजन की मेज़ें हैं या नृत्य की भूमि!

कलकल करते हुए नाले, दरारों और कगारों पर धड़-धड़ाती हुई नदियाँ—ये दोनों ही दिव्य दृश्यों में उपस्थित हैं।



पहाड़ी नदी

कुछ चोटियों पर तो दृष्टि को बिलकुल स्वतंत्रता ही मिल जाती है, कुछ रोक-टोक ही नहीं। बेखटके चारों ओर दूर तक

मनमानी चली जाती है। न उसकी राह में कोई स्थूल शैल ही आकर खड़ा होता है और न उसके रास्ते को कोई दुष्ट मेघ ही रोकता है, कुछ शिखरवरो को तो गगनभेदी और घनच्छेदी होने का इतना अधिक उत्साह है कि वे रुकना भूल ही गए हैं और उच्च से उच्च गगनमंडलो मे लुप्त ही से हुए जाते हैं।

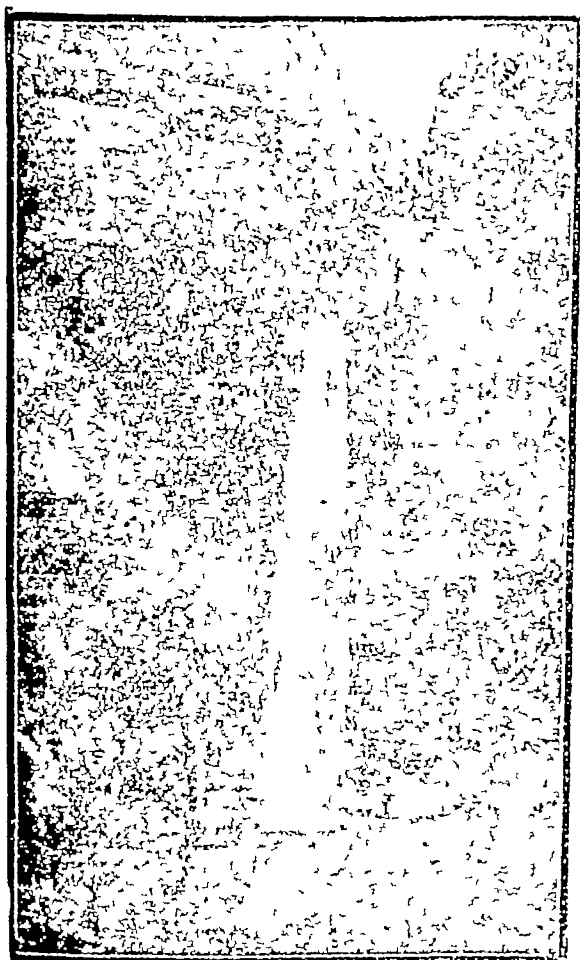
अहा देखो! वह कमल-दल से लगा हुआ छोटा-सा चारु चपल, ओस-कण मनुष्य के मन का कैसा अच्छा चिह्न है। छोटा है, चपल है, परन्तु अहा! कितना पवित्र है! कैसा स्वच्छ और चमकीला है। सत्य के सूर्य, और अनादि दीप्ति का प्रभाव मानों उसी के हृदय मे स्थित है। अरे मनुष्य! क्या तू वही छोटा-सा जल-कण, वही ज़रा-सी बूँद है या तू अनंत है। सचमुच वह तनिक सी बूँद नहीं। तू "ज्योतिषां ज्योतिः" (ज्योतियों की ज्योति) वा प्रकाशो का भी प्रकाश है। सब वेद यही कहते हैं। राम भी यही कहता है। इसमे कुछ संदेह नहीं कि यह तेरा ही तेज और तेरा ही प्रकाश है जो ऐसे ऐसे दिव्य देशों को ज्योति और जीवन से भर देता है। ऊपर-नीचे, इधर-उधर तेरा ही प्रकाश और तेरी ही प्रतिभावान् मूर्ति विराजमान है। तू ही वह शक्ति है जो किसी परिणाम की परवा नहीं करती, परन्तु छोटे और बड़े सबसे काम निकालती है। तू ही उषःकाल को उसकी मुस्कान देता है और तू ही पाटल पुष्प को प्रभा प्रदान करता है।

अर्ध रात्रि के छटा भरे तारे चमकीले।
प्रात ममय के ओस-बिन्दु-सम्दाय छबोले॥
जो कुछ सुंदर और स्वच्छ है अंश कहीं पर।
है तेरा हो नाथ! सभी प्रतिबिंब मनोहर॥
तारा-पति शुभ चंद्र रात में स्वामी तू है।
संध्या की द्युति ओस-प्रात में स्वामी त है॥
शोभा और प्रकाश यहाँ है जो कुछ माया।
तूने ही निर्माण किया औ जगत सजाया॥
है व्यापक तव तेज, वस्तुएँ जग की सारी।
कहती हैं चुपचाप यहाँ हैं विश्व-विहारी॥

राम का वर्तमान निवास-स्थान एक सुघर आनंददायक पहाड़ी कुटी में है। उसके आस-पास एक हरी-भरी और सुनसान प्राकृतिक वाटिका है। एक ओर परमप्रमोदप्रद सुंदर झरना अपने झर्झर-गान से समस्त शांत प्रांत को मुखरित-सा करता रहता है। दूसरी ओर गंगा का एक सुरम्य दृश्य दिखाई देता है। यहाँ पर रामबूटी बहुत उत्पन्न होती हैं, गौरैया और इतर पक्षी दिन भर मनमाना गान करते हैं। यहाँ की वायु स्वास्थ्यकर है। गंगा का गायन और पक्षियों का गूँजना यहाँ पर सर्वदा स्वर्गीय उत्सव-सा बनाए रखते हैं। यहाँ पर गंगा की घाटी बहुत विस्तीर्ण है, मानों गंगा एक बड़े मैदान में बहती है।

प्रवाह बहुत ज़ोर का है, तथापि राम ने कई बार तैरकर उसे पार हो किया है। केदार और बदरी ने बड़े प्रेम से अनेक बार

राम-बादशाह को आमंत्रित किया है, परंतु प्यारी गंगा के विरह की कल्पना-मात्र से उसे बहुत दुःख होता है और उसका



झरना

मुखचंद्र म्लान पड़ जाता है। राम उसे अप्रसन्न नहीं करना चाहता और न उसे उदास होते हुए ही देख सकता है।"

श्रीमान् हैमरटन, जिनका अनुभव और सौंदर्य्य-प्रेम माननीय है, अपनी सम्मति इस प्रकार देते हैं:—"हिम से आच्छादित पर्वत, जिसका प्रतिबिंब निम्नस्थित सरोवर मे पड़ रहा हो—तड़क-भड़क और पवित्रता के मिश्रण का इस दृष्ट संसार में एक ऐसा उदाहरण है, जिसके बराबर का कोई दूसरा उदाहरण मिल ही नहीं सकता। जब सूर्य ढलता है, इसकी सहस्रों छायाएँ लंबी होती हैं—पानी मे तैरती हुई बर्फ़ की चट्टानों मे वे प्रतिबिंब हरे, नीले और पवि॰ दिखाई देते हैं—सूर्य्य के ढलते हुए प्रकाश मे हिम पहले तो श्वेत गुलाब का-सा हलका रंग धारण करता है—फिर गुलाबी और तब लाल दिखाई देता है। आकाश पीला और हरा दिखाई देने लगता है और फिर यह विचित्र दृश्य भयंकर भूरेपन मे परिवर्त्तित हो जाता है। परंतु ये सब दृश्य दर्शकों के हृदय-पटल पर अस्थिर सौंदर्य्य का एक स्थायी स्मरण छोड़ जाते हैं।"

गगन की नीलिमा, सूर्य्यास्त की लालिमा, हिमाच्छादित पर्वतों की पवित्र श्वेतता, पृथ्वी पर लगे हुए वृक्षों और पौधों की हरियाली, पुष्पों के अनेकानेक रंग प्रकृत के उन उपासकों के लिये जो अपने नेत्रों का सदुपयोग करते हैं, अनंत हर्ष देनेवाले हैं। परतु एक निर्निमेष बदलते हुए अद्भुत चित्र के ये सब हाशिये और पृष्ठ-दृश्य हैं। इनके बराबर के या इनसे भी बढ़िया रंग पशुओं और पक्षियों मे पाये जाते हैं। सुवर्ण, रजत, हिंगलू, हीरे, पन्ने आदि खनिज पदार्थों के रंग और उनकी

चमक-दमक और भी चित्ताकर्षक होती है। इस रंग-वैभव का हमारे मस्तिष्क और अध्यात्म से विशाल और गंभीर सबंध है।



हिमाच्छादित पर्वत

शिशु तथा जंगली मनुष्य दोनों ही पुष्पों, परिंदो और कीट-पतंगो के रंगों की प्रशंसा करते हैं। हममे से बहुतो के लिये इनके विचार और स्मरण मानसिक और आध्यात्मिक आनंद तथा शांति प्रदान करते हैं। इसलिये इस बात के जानने से हमे कुछ भी आश्चर्य्य न होगा कि प्राचीन काल में बहुत पहले ही अध्यात्म और प्राकृतिक रंग-व्यवस्था का संबध विचार लिया गया था, और यद्यपि इसमें संदेह नहीं कि मनुष्य के सहस्रो वर्षों के गहन विचारों के पश्चात भी प्रकृति के कई एक सुंदर और हर्षदायक रहस्य जानने का नच

रहे हैं, परंतु वे शनैः शनैः मनुष्य को ज्ञात हो हो जायँगे और उसके आनंद के बढ़ाने में पूर्ण भाग लेंगे।

—कल्याणसिंह शेखावत

पाठ-सहायक

चित्ताकर्षक—(चित्त + आ + कर्षक) चित्त को खींचनेवाला, रँगीला—रसिक, इसी प्रकार रसीला आदि शब्द बनाओ। परमहंस—एक प्रकार के सन्यासी। देखो—"प्यारी गंगे!—साथी हैं" कैसा सुंदर और एक से शब्दों का सुसंगठित वाक्य है। यहाँ राम शब्द स्वामी जी ने अपने लिये रक्खा है। सुनसान—शून्य-स्थान। देखो शब्दों के कैसे जोड़े हैं—तड़क-भड़क, हिमाच्छादित—(हिम + आच्छादित) ढका हुआ।

अभ्यास

१—इस वर्णन की भाषा कैसी है? उसमें किस प्रकार सजावट की गई है।

२—इसी वर्णन को पत्र के रूप में सक्षेप से लिखो और अपनी कल्पना के द्वारा प्रभात-समय मे गंगोत्री का दृश्य चित्रित करो।

३—संधि-विग्रह करो और नियम बताओ—

निर्निमेष, हिमाच्छादित, सदुपयोग, घनच्छेदी, मरुद्गण, उल्लसित।

४—किन विशेष अर्थों में प्रयुक्त किए गए हैं, इनको अन्य अर्थों में प्रयुक्त करो।

चिह्न, देखना, छटा, ढलता, भाग।

५—क्या अंतर हो जाता है और क्यों? सोदाहरण लिखो।

अस्थिर—स्थिर, अस्थायी—स्थायी, म्लान—अम्लान।

६—इनसे भिन्न भिन्न नवीन शब्द बनाकर प्रयोग करो—

मन, भाव, राम।

७—वाच्यपरिवर्तन करो—

प्रशंसा करते हैं, विचार लिया गया था, भाग लेंगे, पवित्र दिखाई देते हैं, जीवन से भर देता है।

८—कितने प्रकार से तुम इस भाव को व्यक्त कर सकते हो—

"तू ही उषःकाल..... प्रदान करता है" (पृ०८५)

९—व्याख्या करते हुए बनने के नियम बताओ—

स्वर्गीय, प्रतिभावान्, म्लान, चमकीला।

संकेत—

१—अलंकृत भाषा की विशेषता समझाना।

२—गद्यकाव्य का साधारण परिचय देना।

---

(१२) जीवन-संग्राम और छोटे प्राणी

जीवन-संग्राम की दृष्टि से छोटे-छोटे कीड़ों-मकोड़ों के जीवन और उनकी शरीर-रचना के देखने से हमें केवल आनंद ही नहीं होता, बरन उसमे ईश्वर की अद्भुत लीला को देखकर उसके प्रति असीम भक्ति और श्रद्धा भी उत्पन्न होती है। पहली बात जो हमे मालूम होती है यह है कि प्राणियो की शरीर-रचना उनके निर्दिष्ट जीवन के अनुकूल ही की गई है। जिस प्राणी मे कम क्षमता है उसका जीवन इस ससार में कदापि सुखमय नहीं हो सकता। क्षमता कई प्रकार की होती है, अर्थात् मानसिक बल, शारीरिक बल, परस्पर सहायता देने की शक्ति, जल-वायु-संबंधी परिवर्तन के सहने की शक्ति, आघात सहने की शक्ति अर्थात् सजीवता और उपयोगिता।

कीड़ों-मकोडो का अवलोकन करने से हमे मालूम होता है कि इनमें भोजन प्राप्त करने और आत्म-रक्षा करने के विचित्र ढंग हैं। खटमल का शरीर गोल और चपटा इसलिये होता है कि काम पड़ने पर वह निवाड़ और पट्टियों के बीच मे बिना कठिनाई के छिप सके। मनुष्य ज्यों ही खाट पर लेटा कि ये अपने संकीर्ण कंदराओं से निकलकर उसका रक्त चूसने लगे, पर ज्यों ही वह बैठकर उनको खोज करने लगा त्यों ही वे अपने-अपने

स्थानों में जा छिपे। चपटा शरीर होने के कारण वे मनुष्य से तो इस प्रकार छिप जाते हैं और शरीर से दुर्गंध निकलने के कारण वे हिंसक प्राणियों से भी बच जाते हैं।

संकीर्ण स्थानों मे छिपनेवाले कीड़ो के शरीर खटमल के ही समान चपटे रहते हैं। एक प्रकार के कीड़ों के शरीर से ऐसा ख़राब तेल निकलता है कि उसके लग जाने से फफोले पड़ जाते हैं। उनके तेल के भय से उनको खाने की इच्छा कोई भी हिंसक प्राणी नही करता। एक दूसरे वर्ग का बीटिल या गुबरैला होता है जो शत्रु के पास आते ही बन्दूक-सी छोड़ता है, जिसका धुआँ शत्रु की आँखों में घुस कर उसे विकल और बेकाम कर देता है। इतने मे वह बीटिल पलायमान हो जाता है।

कोई-कोई इल्लियाँ अपनी ही विष्ठा से अपने शरीर को पोतकर शत्रुओं को भड़काती हैं। एक इल्ली के शरीर पर सेई के समान बाल होते हैं जिन्हे वह भय के समय खड़ा कर अपनी रक्षा करती है। उसके बाल ज़हरीले और खड़े होने पर पैने होते हैं। चटकीले रंगवाले कीड़े बहुत दूर से दिखाई देते हैं और बहुधा निस्सहाय होते हैं; इसलिये हिंसक प्राणी यदि उन पर आक्रमण करे तो उनकी रक्षा का कोई उपाय नहीं; परंतु उनका रंग ही यह घोषित करता है कि उनके शरीर मे कड़वापन, नीरसता आदि के अवगुण भरे हुए हैं। चटकीले रंग को देखकर हिंसक जीव समझ जाते हैं कि यह प्राणी हमारे खाने के योग्य नही है। रंग-बिरंगी तितलियाँ जो

बग़ीचों, खेतों आदि में परियों के समान नाचती और हमें आनंद देती हैं, इसी कारण दुष्ट जीवों से बची रहती हैं।

अनेक जीव किसी न किसी प्रकार हिंसक जीवों से अपनी रक्षा करने में समर्थ हो जाते हैं; पर इस पाठ में केवल उन कीड़ों के वर्णन करने का प्रयत्न किया जायगा, जो स्वाँग रचकर अथवा अभिनय करके शत्रुओं की आँख में धूल झोंकते और अपना काम चलाते हैं।

अनेक बालकों के देखने मे आया होगा कि कंबल नाम का कीड़ा, किसी का हाथ लगते ही, अपने शरीर को गुड़-मुड़ा कर गोलरूप बन जाता है। इसी प्रकार जिंजाई नामक लाल कीड़ा, जो बरसात के आरंभ में दिखाई देता है, भय का संकेत पाते ही गुड़मुड़ो हो निश्चल हो जाता है। इसका अभिप्राय क्या है? एक तो यह कि उस रूप मे शरीर के कोमल अंग नोचे होकर हानि से बचते हैं और दूसरे यह कि उसे निश्चल देख शत्रु यह समझकर कि वह मर गया है उसका पाछा छोड़ देता है।

एक दालनुमा कीड़ा होता है। उसकी चालाकी और भी तारीफ़ करने के लायक़ है। जब वह किसी पत्ते या डाल पर बैठा हो उस समय कोई उँगली भर उठा दे, बस वह तुरंत सिकुड़कर और दाल का रूप धारण करके इस सफ़ाई से नीचे गिर जाता है, मानो कोई दाना टपक पड़ा हो। धरती पर गिरते ही वह

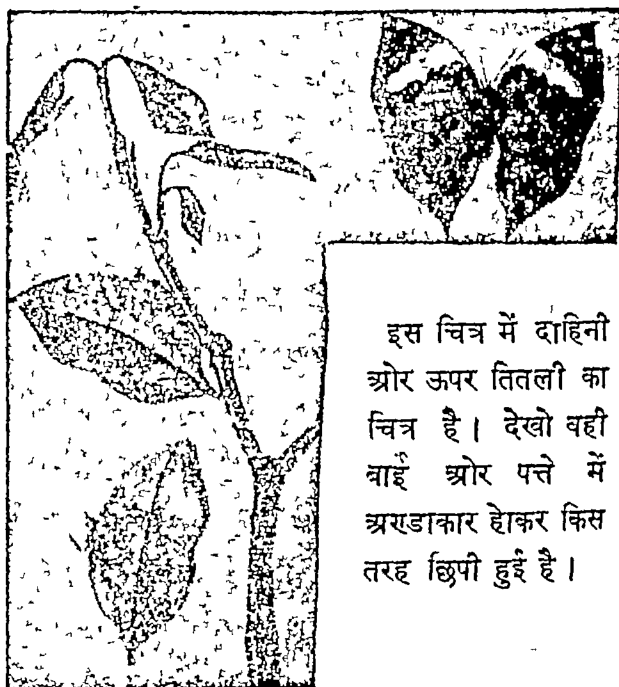
घास-पात का आश्रय ले इस धूर्तता से छिप जाता है कि उसका पता लगना प्रायः असंभव ही हो जाता है। ये तीनों प्रकार के कीड़े मक्कारी नहीं करते तो क्या करते हैं!

ऋतु के अनुसार, अपने रंग बदल कर, घास-तृण आदि में छिप जानेवाले कीड़ों को बहुरूपिये कीड़े कह सकते हैं। गिरगिट में यह शक्ति होती है कि जिस स्थान में जा बैठता है उस स्थान के रंग की झलक अपने शरीर में ले आता है। इतनी जल्दी अपने रंग में परिवर्तन करने की शक्ति टिड्डे मे यद्यपि नहीं है, परंतु वह भी ऋतु के अनुसार भेस बदल लेता है।

बरसात में जब चारों ओर हरियाली रहती है तब उसका रंग भी हरा रहता है। कार्तिक मास मे वह पकी घास का रंग लेने लगता है, और जब चैत्र, वैशाख में हरियाली तथा घास बिलकुल नहीं रहती तब वह बहुरूपिया मटिया रंग का हो जाता है। इस प्रकार रंग बदलने से उसको यह फ़ायदा होता है कि वह अपने को बिना प्रयास छिपा सकता है और अपनी जाति के शत्रुओं से बच सकता है। उसके पंख भी इस प्रकार के बने रहते हैं मानों दो हरे कोंपल डाल से हाल मे ही निकले हों और अभी तक कड़े होकर फैले न हों। जब वह वर्षा-ऋतु में डाल पर बैठा रहता है उस समय उसे पहचान लेना टेढ़ा काम होता है। दूर से देखने में तो धोखा होता ही है।

एक समय हमे हरे रंग की एक इल्ली नीबू के पेड़ के एक पत्ते पर इस ख़ूबी से बैठी हुई नज़र आई कि एक गज़ की

दूरी से ऐसा मालूम होता था कि एक छोटा-सा नींबू डाल से निकल कर पत्ते से सटा हुआ है। हम कई बार उस पेड़ के पास से निकले और प्रत्येक समय हमें यही भ्रम हुआ। उस पेड़ के पत्तों को कोई प्राणी आकर खा जाया करता था, इस



इस चित्र में दाहिनी ओर ऊपर तितली का चित्र है। देखो वही बाईं ओर पत्ते में अण्डाकार होकर किस तरह छिपी हुई है।

लिये थोड़ी देर के पीछे जब उस पेड़ की बारीकी से तलाश की गई, तब मालूम हुआ कि वह नीबू नहीं बल्कि इल्ली है, जो इस प्रकार एक पत्ते से दूसरे पत्ते पर बैठ उन्हें चाट जाती है। जब उसे पकड़ कर हटाने की चेष्टा की गई तब वह पत्ते से ऐसी चिपक गई मानो वह उसी का एक भाग हो।

इल्ली को अभिनय मे इतना प्रवीण देख हमे बहुत विस्मय हुआ, पर उसके साथ यह विचार भी आया कि यदि वह अभिनय मे इतनी कुशल न होती, तो इतने दिनो तक सब लोगो की आँखो में धूल झोंक कर अपना पेट क्यो कर भरती ? तलाश करने पर ज्ञात हुआ कि वह नारंगी के पेड़ पर बैठनेवाली तितली जाति की एक इल्ली थी। नारंगी चूँकि नीबू का ही जाति का पेड़ है इसी कारण वह वहाँ पहुँच गई।

एक दूसरे दिन हमे इससे भी बढ़कर और एक विस्मय-जनक दृश्य देखने को मिला। एक पेड़ की एक डाल मे कलम की हुई और कुछ सूखी हुई एक टहनी-सी हमे दिखाई दी। उसे देख हमारे मन मे यह प्रश्न उठा कि वह टहनी क्यों सूख गई। इसका अनुसंधान करने के लिये ज्यो ही हमने उस टहनी को हिलाना चाहा त्यो ही एक कीड़ा पंख फैला उस पर से उड़ गया। जब तक वह कीड़ा पेड पर बैठा रहा तब तक हमे यही प्रतीत होता रहा कि वह टहनी है, उसका रंग बिलकुल उस पेड की डाली से मेल खाता था और उसके बैठने का ढंग भी ऐसा था कि वह सूखी कलम की हुई कटी टहनी के ठंठल के समान ही दीखता था। वैसा प्राणी हमे अभी तक देखने को नहो मिला। धन्य है, उसके रूप तथा अभिनय को जो देखनेवालों को इतने भ्रम मे डाल देते हैं।

इसी प्रकार कई अक्षम प्राणियो के रंग उनके भक्ष्य के रंगों से मिल जाते हैं और जब वे उन पर जा बैठते हैं तब

सौ मे से ९० मनुष्य उन्हे पहचानने में असमर्थ रहते हैं। कई तितलियाँ और फतिंगे अदृश्य होने मे बड़े निपुण होते हैं। एक प्रकार की तितली की कमर बाल के समान पतली होती है और



कीडा कहाँ है ?

यह बहुधा कटीली झाड़ियों पर बैठती है। फिर बैठती भी इस चतुराई से है कि धड़ डाल मे लय होकर पंख पत्तेनुमा हो जाते

हैं। भूरे रंग के कई फतिंगे पेड़ों की पाड़ पर अथवा काठ की दरारों और उसके गड्ढों में निश्चल बैठकर उनके रंग में छिप जाते हैं। पेड़ों की खुरदरी वर्ता पर दूरदर्शकताल (मेग्नीफाइंग ग्लास) लगाने से कई घुन ऐसे मिलेंगे जो छाल के रंग से अपना रंग मिलाकर अदृश्य से होकर उसे खाते रहते हैं।

एक नीति की पुस्तक में एक गधे की कहानी लिखी है। उसे कहीं व्याघ्र का चमड़ा मिल गया था और वह उसे ओढ़ कर वन के पशुओं को डराया करता था। इसी तरह कार्तिक में एक प्रकार की मक्खी आती है जिसका स्वरूप मधुमक्षिका से इतना मिलता-जुलता है कि कोई भी उसे पकड़ने वा छेड़ने का साहस नहीं करता। न उसमें डंक होता है, और न ज़हर, परंतु अपने आच्छादन की सहायता से वह हिंसक जीवों को डराकर दूर रखती है।

इस देश में शिक्षित तथा अशिक्षित मनुष्यों का लक्ष्य ऐसे छोटे जीवों पर नहीं जाता और इसी लिये अभी तक इस मक्खी का कोई विशेष नाम नहीं पड़ा।

कपास के फूलों पर काले रंग का एक वाटिल कीड़ा आया करता है जो देखने से व्याघ्र-वाटिल कीड़े के समान भयंकर और तेज़-तर्रार मालूम होता है परंतु यथार्थ में वह आत्म-रक्षा के अयोग्य होता है। व्याघ्र-वाटिल के समान शिकार करने की बात तो दूर रही, उसे केवल अपने रूप के कारण

ही सुरक्षा मिल जाती है। कोई कोई उसे तैलिन-बाटिल कहते हैं; परंतु वह तैलिन कहाँ से हो गई सो समझ मे नहीं आता। इसी प्रकार एक निस्सहाय मक्खी और होती है जो वर्र का रूप धारण कर अपनी आत्म-रक्षा कर लेती है।

अफ्रीका महाद्वीप के घने जंगलों मे, जहाँ ९-१० फुट ऊँची घास उगती है, और कहीं-कहीं इस देश में भी, एक घासनुमा कीड़ा मिलता है जिसका रूप बिलकुल घास के समान होता है। यदि वह किसी मनुष्य के हाथ मे रख दिया जाय तो वह शायद ही उसे पहचान सके कि वह कोई प्राणी है। दूसरे कीड़ों के समान उसके भी छः पाँव होते हैं, पर वे इतने छोटे और टेढ़े-सीधे निकले रहते हैं कि देखनेवाले को यही अनुमान होता है कि घास की पोंड़ मे से छोटी छोटी शाखाएँ निकली हैं। उसका सिर घास की गाँठों के समान छोटा होता है जिसमें से पतले महीन पत्तों के समान छोटी मूँछें निकली रहती हैं। हाथ मे लेकर इस जीव को दबाने से यह धूर्त पाँव हिलाकर भी अपना परिचय नहीं देता। दिन के समय वह अपने पैरों से घास की डंठी को दबाए हुए और शरीर को डंठी से चिपकाए हुए निश्चल पड़ा रहता है। रात्रि होते ही घास का स्वाँग छोड़कर यह मक्कार अपने भोजन की खोज मे निकलता है। जिस तरह मनुष्य पेड की छाया में विश्राम कर उसी पर पत्थर चलाता है उसी तरह यदि यह नीच जीव भी अपने आश्रयदाता के ऊपर ही पहले मुँह

चलाता है तो इसमे विचित्रता ही क्या है ! घासनुमा कीड़े की शरीर-रचना मे एक और विशेषता यह है कि जैसे-जैसे ऋतु के अनुसार घास की रंगत बदलती जाती है वैसे ही वैसे वह भो अपनी रंगत बदलता जाता है।

पत्तेनुमा कीड़े कुछ कम विस्मयजनक प्राणी नहीं हैं। इनका शरीर चपटा और चौड़ा होता है और इनके ऊपर पंखों मे पत्तों के समान नसें होती हैं। कीड़ों के द्वारा खाए हुए पत्तो के समान उनको टाँगें होती हैं। ये कीड़े बहुरूपिया-पन करके पत्तों को क्या ही अच्छा नक़ल कर दिखाते हैं।

अभी तक जिन प्राणियों का वर्णन किया गया है वे ग़रीब दुखिया हैं, उन्हें रात-दिन अपने प्राणों की रक्षा की चिंता रहती है। बलिदान देते समय बकरा ही चढ़ाया जाता है, सिंह नहीं; देवता भी दुर्बल के ही घातक होते हैं, उसी का बलि-दान लेते हैं। जीवन-संग्राम का अवलोकन करने से यह बात अक्षरशः सत्य मिलती है। कमजोर और सीधे जीवो को इस दुनिया मे खैरियत नहीं, उनको माताएँ कब तक दुआ माँगेंगी। बेचारों का नाश करने के लिये कोई न कोई तैयार ही रहता है। विधाता ने अनेक उपाय रच कर अक्षम जीवों को बचने का मार्ग बतला दिया है; परंतु फिर भी कभी न कभी ऐसा मौका आ ही जाता है जब उनको अपने जीवन से हाथ धोना ही पड़ता है, अर्थात् सक्षम प्राणी उनका काम तमाम ही कर डालते हैं।

—लज्जाशंकर झा, एम० ए०, एल० टी०

पाठ-सहायक

पलायमान—भाग जाना, **जीवन-संग्राम**—जीवन के लिये संग्राम, **निर्दिष्ट**—निश्चित, **गुडमुड़ी**—सिमिट कर कुंडलित हो जाना, **दालनुमा**—नुमा-वत् या समान (फारसी), **अभिनय**—नक़ल, **विस्मयजनक**—आश्चर्य उत्पन्न करनेवाली, **बृहद्दर्शकताल**—वह शीशा जिससे छोटी वस्तु बड़ी दिखाई पड़ती है। **अक्षरश.**—अक्षर, अक्षर। इसी प्रकार प्रायशः, नित्यशः आदि जानो।

अभ्यास

१—छोटे छोटे कीड़े किस प्रकार अपने शत्रुओं से अपनी रक्षा करते हैं?

२—भावार्थ लिखो और वाक्यों में प्रयुक्त करो—

जीवन से हाथ धोना, काम तमाम करना, आँख मे धूल झोंकना, टेढ़ा काम है।

३—अंतर बताओ—और उदाहरण देकर समझाओ—हरियाली—हरि-यारी, अभिनय—अभिनव, नक़ल—न कल।

४—भिन्न भिन्न अर्थों में प्रयोग करो—

वर्ग, पोत, रग, नज़र, कुशल।

५—प्रथम अनुच्छेद का साराश लिखो और उसको स्पष्टरूप से समझाओ।

६—क्या अंतर हो जाता है, सोदाहरण लिखो—

जैसे जैसे, जैसे-तैसे, जैसे के तैसे, इसी प्रकार 'और' आदि अन्य शब्दों के प्रयोग लिखो।

७—अंतिम वाक्य का विश्लेषण करो और उसमें से इन शब्दों की पदव्याख्या करो—

अनेक, रचकर, मार्ग, परंतु, ऐसा, अर्थात्।

८—इस पाठ का तत्त्व क्या है, वह अन्य जीवों पर कैसे घटित हो सकता है ?

९—इस पाठ से जोड़ेवाले शब्द चुनो और उनके पर्यायी या विपर्यायी शब्द बताओ।

संकेत—

१—इसी प्रकार अन्य कीड़ों के विषय मे भी विशेष बातें बताना।

(१३) गंगावतरण*

तब नृप करि आचमन मारजन सुचि-रुचिकारी।
प्रानायाम पुनीत साधि चित-वृत्ति सुधारी॥
बहुरि अंजली बाँधि ध्यान विधि कौ विधिवत गहि।
माँगी गंग उमंग-सहित पूरब प्रसंग कहि॥१॥
बद्ध-अंजली देखि भूप बिनवत मृदु बानी।
मुसकाने विधि आनि चित्त "चुल्लू भर पानी"॥

---

* अयोध्या-नरेश श्री सगर ने अश्वमेध-यज्ञ किया और नियमानुसार एक घोड़ा छोड़ा, इंद्र ने उसे ले जाकर पाताल में कपिल-मुनि के समीप बाँध दिया; सगर के ६० हज़ार वीर कुमार पृथ्वी को खोद कर वहाँ ढूँढते ढूँढते पहुँचे और कपिल को चोर जान तंग करने लगे। इस पर उन्होंने उन्हें अपने उग्र तप-तेज से भस्म कर दिया। तदनंतर अंशुमान बड़ी तपस्या करके घोड़ा ले आए, तब सगर का यज्ञ पूर्ण हुआ। अब भस्म हुए कुमारों का उद्धार करने के लिये उनके वंश के कई महापुरुषों ने यत्न किया किंतु वे कुछ न कर सके। अंत में भगीरथ ने उग्र तपस्या कर ब्रह्माजी को प्रसन्न किया और उनसे गंगा जी के प्राप्त करने का वरदान पाया। गंगा जी ने स्वेच्छाविरुद्ध श्री ब्रह्मा जी के वचनों की रक्षा के लिये जाना तो निश्चय किया किंतु वहाँ ठहरना न स्वीकार किया। भगीरथ ने तब महादेव जी को अपनी तपस्या से प्रसन्न कर गंगा जी को अपने शीश पर धारण करने की स्वीकृति प्राप्त की, और फिर ब्रह्मा जी से गंग-धार के छोड़ने की प्रार्थना की।

लागे करन विचार बहुरि जग-हित-अनहित पर ।
पाप-पुन्य-फल-उचित-लाभ-मर्याद खचित पर ॥२॥

पुनि गुनि वर वरदान आपनौ औ संकर कौ ।
सगर-सुतनि कौ साप-ताप तप-नर-पति-वर कौ ॥
सुमिरि अखिल-ब्रह्मांड-नाथ मन माथ नवायौ ।
सब समय करि दूरि गंग-दैबौ ठिक ठायौ ॥३॥

किए सजग दिग-पाल व्याल-पति-हृदय ढ़ढ़ायौ ।
कोल कमठ पुचकारि धरनि धार धरायौ ॥
स्वस्ति-मंत्र पढ़ि तानि तः मुद-मंगल-कारी ।
लियौ कमंडल हाथ चतुर चतुरानन धारी ॥४॥

इत सुरसरि की धाक धमकि त्रिभुवन भय-पागे ।
सकल सुरासुर बिकल बिलोकन आतुर लागे ॥
दहलि दमौं दिग-पाल विकल-चित इत उत धावत ।
दिग्गज दिगदंतनि दबोचि ग भभरि भ्रमावत ॥५॥

नभ मंडल थहरान भानु-रथ थकित भयौ छन ।
चंद चकित रहि गयौ सहित सिगरे तारा-गन ॥
पौन रह्यौ तजि गौन गह्यौ सब मौन सनासन ।
सोचत सबै सकाइ कहा करिहैं कमलासन ॥६॥

विंध्य-हिमाचल-मलय-मेरु-मंदर-हिय हहरे ।
ठहरे जदपि पखान ठमकि तउ ठाम न ठहरे ॥

थहरे गहरे सिंध पर्वे बिनहूँ लुरि लहरे।
　　पै उठि लहर-समूह नैकु इत उत नहिं ठहरे ॥७॥

गंग कह्यौ उर भरि उमंग तौ गंग सही मैं।
　　निज तरंग-बल जौ हर-गिरि हर-संग मही मैं॥
लै स-बेग-बिक्रम पताल-पुरि तुरत सिधाऊँ।
　　ब्रह्म-लोक कौं बहुरि पलटि कंदुक-इव आऊँ ॥८॥

सिव सुजान यह जानि तानि भौंहनि मन माषे।
　　बाढ़ो-गंग-उमंग भंग पर उर अभिलाषे ॥
भए सँभरि सन्नद्ध भंग कैं रंग रँगाए।
　　अति दृढ़ दीरघ शृंग देखि तापर चलि आए ॥९॥

बाघंबर कौ कलित कच्छ कटि-तट सौं नाध्यौ।
　　सेसनाग कौ नाग-बंध तापर कसि बाँध्यौ॥
ब्याल-माल सौं भाल-बाल-चंदहिं दृढ़ कीन्यौ।
　　जटा-जाल कौ झाल-ब्यूह गह्वर करि लीन्यौ ॥१०॥

मुंड-माल, यज्ञोपवीत कटि-तट अटकाए।
　　गाड़ि सूल, सृंगी-डमरु तापर लटकाए।
वर बाँहनि कर फेरि चाँपि चटकाइ आँगुरिनि।
　　बच्छस्थल उमगाइ ग्रीव उचकाइ चाय भिनि ॥११॥

तमकि ताकि भुज-दंड चंड फरकत चित चोपे।
　　महि दबाइ दुहुँ पाय कछुक अंतर सौं रोपे॥

मनु बल-बिक्रम-जुगल-खंभ जग-थंभन हारे।
धीर-धरा पर अति गंभीर दृढ़ता-जुत धारे ॥१२॥

जुगल कंध बल-संध ठुमकि हुमसाइ उचाए।
दोउ भुज-दंड उदंड तोलि ताने तमकाए॥
कर जमाइ करिहाँय नैन नभ-ओर लगाए।
गंगागम की बाट लगे जोहन हर ठाए ॥१३॥

बल-बिक्रम-पौरुष अपार दरसत अँग अँग तैं।
बीर-रौद्र दोउ रस उदार झलकत रँग रँग तैं॥
मनहुँ भानु-सितभानु-किरन-बिरचित पट-बर की।
झलक दुरंगी देति देह-द्युति सिव संकर की ॥१४॥

बचन-बद्ध त्रिपुरारि ताकि सन्नद्ध निहारत॥
दियौ ढारि बिधि गंग-बारि मंगल उच्चारत॥
चली बिपुल-बल-बेग-बलित बाढ़ति ब्रह्मद्रव।
भरति भुवन भय-भार मचावति अखिल उपद्रव ॥१५॥

निकसि कमंडल तैं उमंडि नभ-मंडल खंडति।
धाई धार अपार बेग सौं बायु बिहंडति॥
भयौ घोर अति सब्द धमक सौं त्रिभुवन तर्जे।
महा मेघ मिलि मनहुँ एक संगहिं सब गर्जे ॥१६॥

भरके भानु-तुरंग चमकि चलि मग सौं सरके।
हरके बाहन रुकत नैकु नहिं बिधि-हरि-हर के॥

दिग्गज करि चिक्कार नैन फेरत भय-थरके।
धुनि-प्रतिधुनि सौं धमकि धराधर के धरधरके ॥१७॥

कढ़ि कढ़ि गृह सौं विबुध बिबिध जानिन पर चढ़ि चढ़ि।
पढ़ि पढ़ि मंगल-पाठ लखत कौतुक कछु बढ़ि बढ़ि ॥
सुर-सुंदरि ससंक, बंक दीरघ दृग भीने।
लगीं मनावन सुकृत, हाथ काननि पर दीने ॥१८॥

निज दरेर सौं पौन-पटल फारति फहरावति।
सुरपुर के अति सघन घोर घन घसि घहरावति ॥
चली धार धुधकारि धरा-दिसि काटति कावा।
सगर-सुतनि के पाप-ताप पर बोलति धावा ॥१९॥

बिपुल बेग सौं कबहुँ उमँगि आगे कौं धावति।
सौ सौ जोजन लौं सुढार ढरतिहिँ चलि आवति ॥
फटिकसिला के बर बिसाल मन विस्मय बोहत।
मनहु बिसद छद अनाधार अंबर मैं सोहत ॥२०॥

कबहुँ सुधार अपार-बेग नीचे कौं धावै।
हरहराति लहराति सहस जोजन चलि आवै ॥
मनु विधि चतुर किसान पौन निज मन कौ पावत।
पुन्य-खेत-उतपन्न-हीर की रासि उसावत ॥२१॥

उड़ति फुही की फाव फबति फहरति छवि-छाई।
ज्यौं परवत पर परत झान बादर दरसाई ॥

तरनि-किरन तापर विचित्र बहुरंग प्रकासै ।
इन्द्र-धनुष की प्रभा दिव्य दसहूँ दिसि भासै ॥२२॥

इहि विधि धावति धँसति ढरति ढरकति सुख-देनी ।
मनहुँ सवाँरति सुभ सुर-पुर की सुगम निसेनी ॥
विपुल वेग-बल-विक्रम कैं ओजनि उमगाई ।
हरहराति हरषाति संभु-सनमुख जब आई ॥२३॥

भई थकित छवि-चकित हेरि हर-रूप मनोहर ।
है आनहि के प्रान रहे तन धरे धरोहर ॥
भयौ कोप कौ लोप चोप औरै उमगाई ।
चित चिकनाई चढ़ी कढ़ी सब रोष-रुखाई ॥२४॥

कृपानिधान सुजान संभु हिय की गति जानी ।
दियौ सीस पर ठाम वाम करि कै मनमानी ॥
सकुचति ऐंचति अंग गंग सुख-संग लजानी ।
जटा-जूट-हिम-कूट सघन बन सिमिटि समानी ॥२५॥

पाय ईस कौ सीस-परस आनँद अधिकायौ ।
सोइ सुभ सुखद निवास बास करिबौ मन ठायौ ॥
सीत सरस संपर्क लहत संकरहु लुभाने ।
करि राखी निज अंग गंग कै रंग भुलाने ॥२६॥

विचरनि लागी गंग जटा-गह्वर-बन-बीथिनि ।
लहरति संभु-समीप-परस-सुख दिननि-निसीथिनि ॥

इहिं विधि आनँद में अनेक बीते संवत्सर।
छाड़ति छूटत न, बनत ठनत नव नेह परस्पर ॥२७॥

यह देखि दुखित भूपति भए, चित-चिंता प्रगटी प्रबल।
अब कीजै कौन उपाय जिहिं, सुरसरि आवै अवनि-तल ॥२८॥

(गंगावतरण से)

—जगन्नाथदास 'रत्नाकर' बी० ए०

पाठ-सहायक

भ्रमावत—घुमाते हैं, सकाइ—सशंकित हो, पषान—पाषाण, विक्रम—पराक्रम, कंदुक—गेंद, माषे—कुपित हुए, सन्नद्ध—तैयार, नाध्यौ—नाथ, लपेट, गह्वर—गुफा—गहरा, भिनि—भीगकर, भरकर, थंभनहार—थामनेवाले, जोहन—देखना, ठाए—स्थिर हो, द्युति—चमक, ब्रह्मद्रव—गंगाजल, विहडति—फाड़ती, हरकै—रोके, बिबुध—देवता, देखो यहाँ चढ़ि चढ़ि आदि क्रियापदों की पुनरुक्ति ज़ोर देने के लिये है। कावा काटना—फेरा लगाना, फुही—फव्वारे—छींटे, तरनि—सूर्य—नौका, जूट—समूह, सपर्क—साथ, बीथी—मार्ग, निसीथिनि—रातों।

अभ्यास

१—गंगा जी के अवतरण का कैसा चित्रण यहाँ किया गया है?

२—शंकर जी के रूप का चित्रण कवि और चित्रकार ने कैसी वास्तविकता एवं सजीवता के साथ किया है—दोनों को देखकर उसे अपनी भाषा में व्यक्त करो।

३ यहाँ शब्द-संगठन पर विशेष ध्यान दो, कैसी सानुप्रासिक पदावली है, जिससे रचना-सौंदर्य एवं पाठ-माधुर्य आ गया है। तुम ऐसी पंक्तियाँ चुन कर कंठाग्र करो।

४—कौन कौन-सी ऐसी पंक्तियाँ हैं जिनमें विशेष विचित्रता एव सुदर रोचकता आई है, और जिनमें भाव चारुता से व्यक्त किया गया है उन पंक्तियों को स्पष्ट करो।

५—छं० नं० १२, १४, २०, २१ का भावार्थ लिखो।

६—गगा जी के गिरने का कैसा वर्णन किया गया है, सरल हिंदी मे लिखो, और अपनी कल्पना से उसे बढ़ाओ।

७—ऐसे छद चुनकर बताओ जिन पर चित्र बन सकते हैं।

८—खड़ी बोली में रूपातरित करो और पद-व्याख्या करो—हेरि, ह्वै, भयौ, औरै, उमगाई, इहि, धावति, मनहुँ (छं० न० २३ २४)

९—शुद्ध रूप बताओ—ठिक, छन, पौन, आँगुरिनि, वच्छस्थल, खभ, परबत।

१०—पर्यायवाची शब्द बताओ—
गगा, शिव, विधि, सुर।

संकेत—

१—भाषा की विशेषता, क्रिया आदि के रूपों पर प्रकाश डालना।

२—उत्प्रेक्षा अलकार एव यमक अनुप्रास आदि समझाना।

३—काव्य के विशेष गुणों की विवेचना करना।

---

(१४) वाटरलू का युद्ध

ऐसा कौन है, जिसने पराक्रमी सम्राट् नेपोलियन का नाम नहीं सुना। अपने साहस, बल और विक्रम से ही, यह साधारण स्थिति से फ्रांस देश का विजयी सेनापति और प्रतापी सम्राट् हुआ। नेपोलियन की इच्छा थी कि वह विश्व-विजेता फ्रांस-सम्राट् हो जाये। इसके लिये उसने युद्ध किए और सारे यूरोप का शत्रु बना। प्रथम तो वह कुछ सफल हुआ किन्तु अन्त में उसे नीचा देखना पड़ा। वाटरलू के युद्ध में उसका सौभाग्य दुर्भाग्य में रूपांतरित हुआ। यूरोप के राजाओं ने मिलकर बहुत बड़ी तैयारी के साथ फ्रांस पर धावा कर दिया—साढ़े तीन लाख का बल आस्ट्रियन राजकुमार स्वाट जेनवरा के अधीन चला, और ज़ार ने सवा दो लाख सेना के साथ कूच किया। इँग्लैंड और प्रशिया ने वेलिंगटन तथा ब्लूचर के आधिपत्य में ढाई लाख सेना भेजी।

छोटे-मोटे राजाओं ने भी ज़ोर लगाया और दस लाख रणतरियों ने फ्रांस के उपकूल को जा घेरा। विश्वविजयिनी अँगरेज़ी सेना तथा जल के अधीश्वर इँगलैंड का महत्पराक्रम भी इस सम्राट् से युद्ध करने के लिये कृतसंकल्प हो उठा। वाटरलू के युद्ध को यूरोपीय महाभारत कहने में तनिक भी अत्युक्ति नहीं कही जा सकती। इसी युद्ध में नेपोलियन के भाग्य के साथ फ़रासीसी

प्रजा के भी भाग्य का निपटेरा होना था। पाठकों को इस युद्ध का विवरण पढ़ने से ज्ञात होगा कि नेपोलियन के विजयी होने में उसके एक सेनापति की विश्वासघातकता बाधक हुई; तो भी जैसी वीरता-धीरता नेपोलियन ने दिखाई वैसी आज सौ वर्ष होते आते हैं किसी भी दूसरे व्यक्ति मे सुनी या देखी नहीं गई।

इतिहासकार 'सार्टो' लिखता है—'यदि नेपोलियन की टोपी और कोट किसी लड़की को पहना कर उसे खड़ा कर देते तो भी सारे यूरोप के राजा एक सिरे से दूसरे सिरे तक मिलकर युद्ध की तैयारी करने लग जाते।' इतना आतंक नेपोलियन का यूरोप पर था। यदि धर्म से काम लिया जाता तो कोई उसे जीतनेवाला ही न था। उसकी तरह यदि दूसरी किसी राज-शक्ति को अपनी मान-मर्यादा तथा अपने देश-गौरव के लिये अकेला लड़ना पड़ता तो उसके नाम का चिह्न भी एक दिन मे ही विलुप्त हो गया होता।

नेपोलियन का विरोध करने में अँगरेज़ों का एक वर्ष में जो धन ख़र्च हुआ था उसे सुनकर पाठक दंग रह जायँगे। चार अरब पचास करोड़ फ्रांक तो जल-विभाग की सैन्योन्नति मे, छः अरब पंचानबे करोड़ समर-विभाग के व्यय में, दो अरब पचहत्तर करोड़ दूसरे राजाओं को सहायता में व्यय हुए; इसके अतिरिक्त छः लाख सेना और अट्ठावन रण-पोत युद्ध के लिये हरदम तैयार रहते थे। यह अनौचित्य उस समय की राज-नीति का कीर्ति-स्तंभ था जो किसी से छिपा न था।

इधर नेपोलियन अपनी साधुता पर ही डटा रहा। वह प्रजा के सुख-स्वतंत्रता की चिंता और शांति-स्थापन की चेष्टा बराबर ही करता रहा। नेपोलियन ने हरतेनि को रूस के ज़ार के पास भेजा जिसमे संधि हो जाय और रक्त-पात न हो, परंतु कुछ फल न हुआ। राजाओं ने घोषणा कर दी कि हमारा संग्राम अहंकारी नवाब नेपोलियन के साथ है, फ्रांस की प्रजा के साथ नहीं। इतने पर भी नेपोलियन को प्राणाधिक प्यार करनेवाली फरासीसी प्रजा ने अपने सम्राट् का प्रेम न छोड़ा और फ्रांस मे भी युद्ध की तैयारियाँ होने लगी।

'स्वर्गादपि गरीयसी'[१] मातृभूमि की गौरव-रक्षा के लिये माताएँ पुत्रो के हाथों को तलवार-बंदूक से सुसज्जित कर, जन्मभूमि के लिये रण मे जाकर विजयी होने या स्वर्ग प्राप्त करने का महोपदेश देने लगी, वृद्ध पिता धर्म-मंदिरो मे जाकर फ्रांस की मर्य्यादा को सुरक्षित रखने के लिये परमपिता से प्रार्थी होने लगे। वाह रे वीर नेपोलियन! 'प्राण जाहिं बरु धर्म्म न जाई।' इसका निर्वाह तूने ही किया। वह कहने लगा कि—'यदि मैं चाहूँ तो खड़े खड़े कल १७९२ ई० वाला प्रजाविद्रोह खड़ा कर दूँ जिससे वे रजवाड़े अपनी आयु आप मरें, लेकिन नहीं, मैं ऐसा न करूँगा।"

अंततः[२] दो लाख अस्सी सहस्र सेना नेपोलियन के झंडे के

१—संस्कृत—स्वर्ग से भी अधिक गुरुतावाली।

२—संस्कृत—अंत में।

नीचे इकट्ठी हुई। इतनी सेना दस लाख शत्रु-दल का सामना करने के लिये तैयार हुई। शत्रु-वाहिनी कई विभिन्न दलों में विभक्त हो फ़्रांस की ओर दौड़ा। नेपोलियन भी विचारने लगा कि कहाँ मोर्चा लूँ—राजधानी के पास, सीमांत पर, या बेलजियमस्थ अँगरेज़ों की ही पहले अभ्यर्थना करूँ। ११ जून को रात भर सलाह होती रही, १२ को नेपोलियन ने नैराश्य-भरे नेत्रों से राज-भवन की ओर एक दृष्टि डाली और फिर झट वह सवार होकर चल दिया।

ता० १३ को पेरिस से १५० मील पर आव्ससे नामक स्थान पर वह पहुँचा। यह फ़्रांस का सीमांतस्थ ग्राम था। यहाँ वीर नेपोलियन ने अपनी सेना एकत्र की। उत्तर मे अनुमान से २५ कोस पर थोड़े थोड़े अंतर पर वेलिंगटन और ब्लूचर लगभग सवा सवा लाख सेनाएँ लिए पड़े थे। दो लाख रूसी सेना और आकर इनमे मिलनेवाली थी। नेपोलियन ने कहा कि इन पर इस तरह आक्रमण हो कि तीनों दल एक न होने पावें और अलग अलग जीते जायँ। परंतु विश्वास-घाती नमकहराम कुलांगार दुष्ट बोरमेंटो ने नेपोलियन की यात्रा की सूचना वेलिंगटन को दे दी। तो भी शत्रु-दल की पहली पराजय १४ जून को 'शालरय' मे हुई। दो हज़ार साथी खोकर शत्रु-दल तीन सौ कोस पर ब्रूसेल्स को भागा। नेपोलियन ने सेनापति 'ने' को चालीस हज़ार का दल देकर भेजा कि वह दस मील पर 'कायरटर त्रास' पर आक्रमण करे

नेपोलियन ने सोचा कि अलग अलग हम सबको ही मार लेंगे, उसे यह पता न था कि विश्वासघाती ने शत्रु को सूचना दे दी है और 'ने' की सेना मार्ग में विश्राम लेकर काम बिगाड़ देगी। 'ने' ने समझा कि 'कायरटर ब्रास' तो खाली है उसे ले ही लेंगे। उसने झूठमूठ सम्राट् को लिख दिया कि स्थान अधिकार में आ गया। सम्राट् सानंद लिगनी की ओर चल पड़ा। लिगनी 'कायरटर' और 'नामूर' के बीच में था। यहाँ अस्सी सहस्र सेना के साथ ब्लूचर डटा था। सम्राट् से न रहा गया। उसके पास साठ हज़ार प्रशियन सेना थी। उसी को लेकर वह शत्रु पर बाज़ की तरह टूट पड़ा। दस हज़ार बंदी हुए और बहुत-से मारे गए, बाक़ी भाग खड़े हुए।

यदि 'ने' ने असावधानी और बोरमेंटो ने विश्वासघात न किया होता तो युद्ध का नक़शा और ही हो गया होता और वाटरलू के युद्ध को इतना महत्त्व कदाचित् न मिलता, न सेंट हेलना ही इतना प्रसिद्ध होता। परंतु विधाता की गति किसी से जानी नहीं जा सकती। नेपोलियन की शक्ति के ह्रास का समय आ गया था, मौत उसे सेंट हेलना जैसी गंदी जगह में खींच कर ले जाने को तैयार हो रही थी।

जब 'ने' मार्ग में ससैन्य विश्राम कर रहा था, तब वेलिंगटन ठुमुक ठुमुक कर नाचने की तैयारियाँ कर रहा था। फ़रासीसी सेना का संवाद पाते ही पेशवाज उतारकर वह दूसरा ही काम करने लगा। सेनापति ड्यूक आफ़ ब्रोंसविक

तो ऐसा घबरा उठा कि उसे गोद के बच्चे की भी सुध न रही और वह धड़ाम से धरती पर गिर कर चुटोला हो गया। रण-भेरियाँ एक ओर बजने लगीं दूसरी ओर बादल ने भी अपना दमामा कूटना आरंभ किया और बहत्तर घंटे लगातार वर्षा की। इस दशा मे भी सेना अपने काम में बराबर अग्रसर होती रही।

कायरटर ब्रास को 'ने' के देखते देखते वेलिंगटन ने अपने अधिकार में कर लिया। तब 'ने' की आँखें खुलीं कि हमने कतिपय घड़ियों का विश्राम कितने भारी दामों में ख़रीदा। पर हो गया सो हो गया, युद्ध के समय हृदय में अति लज्जित हुआ। 'ने' चाहता था कि किसी तरह मेरे प्राण चले जायँ तो अच्छा हो, मैंने झूठ बोलकर और काम में त्रुटि करके बड़ी नीचता की है, इस जीवन से तो मरना ही अच्छा। परंतु नेपोलियन ने कुछ न कहा, उलटा उसे साहस और धैर्य के अवलंबन करने को पत्र लिखा, क्योंकि नेपोलियन अवसर और मनुष्य को बहुत पहचानता था। वह समझा कि जो हो गया वह अब बदल नहीं सकता। अब 'ने' क्या कर सकता है।

१६ वीं जून को नेपोलियन वेवर की ओर जा ब्लूचर की राह रोकने को दौड़ा तथा बीस हज़ार के बल के साथ उसने मार्शल ग्रेट को भागी हुई प्रशियन सेना के पीछे भेजा। अंत मे 'ने' के साथ मिलकर अँगरेज़ी सेनापति वेलिंगटन को नेपोलियन ने भगा दिया और कायरटर ब्रास पर फिर अधिकार कर लिया। अँगरेज़ी सेना ने वाटरलू की ओर भागकर चौड़ी जगह में डेरे डाले।

धीरे धीरे पानी और कीचड़ से लथपथ हो, फ़रासीसी सेना दिन छिपे वाटरलू के पास जा पहुँची। इस अवसर पर अठारह घंटे तक नेपोलियन, भोजन-विश्राम तो कैसा, जल तक न छू सका। ग़रीब भो ऐसे दुर्दिन में झोपड़े मे सुख से सोता होगा, परंतु सम्राट् को चैन न था। सच है राजाओं का जीवन देखने मे तो, चाहे कैसा ही सुखमय क्यों न हो परंतु सच्चा सुख इन्हें स्वप्न में भो नहीं होता। शत्रु-दल दो लाख से कुछ कम होगा और फ़रासीसी-दल आधे लाख से कुछ ही अधिक। १८ जून रविवार को फ़रासीसियों की बड़ो हानि हुई, पर दोनों ओर के वीर बड़े जोश से लड़ते रहे।

रण-क्षेत्र के पैशाचिक दृश्य का वर्णन करते हृदय काँपता है। मुर्दों का ढेर, किसी की आँतें खिंची पड़ो हैं, किसी की जाँघें पेट मे गड़ो हैं; रात को मुर्दों पर पैर धरते हुए पैदलों और घोड़ों की टापों से उनको खूँदते हुए सवार दौड़े जाते हैं। सैनिकों के अंग बारूद के धुएँ से ढके हैं, घायल हाहाकार कर रहे हैं, वीर मार मार पुकार रहे हैं।

अँगरेज़ी सेनापति वेलिंगटन के पैर फिर उखड़े और फिर वह ब्रूसेल्स की ओर भागा। ब्लूचर को पीछे रखकर उसका सहयोगी बूले वेलिंगटन की सहायता को आ रहा था। उससे मिलने पर वेलिंगटन की हिम्मत बँधो। इस समय नेपोलियन के पास कुल साठ सहस्र से अधिक सेना न बची थी। वह समझता था कि ग्रेट की सेना आकर यदि मिल जायगो तो मैं अवश्य

विजयी हूँगा, पर दुष्ट ग्रेट बुलाने पर भी न आया और उसने नेपोलियन का सत्यानाश ही कर दिया।

ग्रेट के पक्ष तथा विपक्ष मे इस संबंध मे बहुत मत हैं, परंतु मैं ग्रेट की निर्दोषिता के समर्थकों की भूल समझता हूँ, क्योंकि वह यदि आना चाहता तो जब उसे ऐसी कठिन स्थिति का संवाद मिला था तभी आकर वह सम्राट् का सहायक होता, परंतु उसका मन काला था। नेपोलियन को लड़ना ही पड़ा। दोनो दल समझते थे कि इसी युद्ध मे हार-जीत का आखिरी फैसला होना है। इसी से जी खोलकर लड़े। एक फरासीसी तीन शत्रुओं के साथ लड़ता था। एक एक करके फ्रेंच मरने लगे पर हारे नही। अंत मे नेपोलियन ने सदा समर-विजयी इंपीरियल गार्ड को अपनी विनष्ट और मुट्ठी भर बची हुई सेना की सहायता को भेजा और वह आप ललकारता रहा। उससे किसी ने कहा, 'महाराज हट जाएँ गोले आ रहे हैं'। उसने उत्तर दिया, "मुझे मारनेवाला गोला अभी ढल कर तैयार ही नही हुआ।"

जब नेपोलियन ने देखा कि रक्षक-दल भी एक एक करके मारा गया, तब उसके हृदय मे निराशा का निविड अंधकार छा गया, देखते ही देखते इँग्लैंड और प्रशियन पताकाएँ एक हो गईं और दोनों ओर से फरासीसी सेना का ध्वंस होने लगा। सूर्य्यदेव वीर नेपोलियन को भागते न देख सके और उन्होंने अपना मुँह छिपा लिया। विजयी ब्लूचर और वेलिंगटन छाती से छाती मिलाकर मिले। नेपोलियन हारकर भागने के पहले

चाहता था कि बची हुई मुट्ठी भर सेना के साथ जाकर जूझ मरे पर सेनापति ने उसे रोका और उसने स्वयं भी समझा कि यह एक प्रकार की आत्महत्या है, वीरोचित काम नहीं।

सुतराम् उसकी बची हुई सेना ने जाकर सम्राट् की जय बोलते हुए एक बार फिर आक्रमण किया और बहुत-से शत्रु-दल को मार कर उसने अपने प्राण दिए। अब नेपोलियन ने समझ लिया कि फ़रासीसी प्रजा के छुटकारे की आशा बिलकुल नहीं अतः वह पेरिस की ओर चला। अभी कुछ सेना बची थी, इससे शत्रु-दल ने कहला भेजा; "तुम प्राण मत दो, आत्म-समर्पण करने से हम तुम्हें अभयदान दे देंगे।" वीर फ़रासी-सियों ने इसका यही उत्तर दिया कि 'हम मरना-मारना जानते हैं, हमें आत्मसमर्पण करने का अभ्यास ही नहीं है।'

यही सुप्रसिद्ध वाटरलू की लड़ाई है जिसके साथ साथ महावीर नेपोलियन का सौभाग्य-सूर्य्य अस्ताचलावलंबी हुआ। इसने एक बार फिर लड़ने का विचार किया पर फ़्रांस धन-जन से हीन हो गया था, सेनापतियों ने संमति न दी। तब इसने अमेरिका जाकर दिन काटना विचारा। परंतु अँगरेज़ों की दृष्टि से बचकर जहाज़ का जाना कठिन था। उनकी अनुमति माँगी गई तो न मिली। हारकर जब वह जहाज़ करके उस पर सवार हुआ तब अँगरेज़ों के भय से कई दिन जहाज न छूटा क्योंकि उसने राज्य त्याग कर उसे मंत्रि-मंडल के हाथ में सौंप दिया था।



अब नेपोलियन ने समझ लिया कि फ़रासीसी प्रजा के छुटकारे की आशा बिलकुल नहीं अतः वह पेरिस की ओर चला ।

त्याग-पत्र में उसने अपने पुत्र को ही उत्तराधिकारी नियत किया था। किंतु शत्रु-दल ने फिर बर्बोन वंशजों को ही राज्य दिया।

जब बर्बोन ने इसका जहाज़ घेरना चाहा तब वह अँगरेज़ी जहाज़ मे चला गया और कहने लगा कि मैं अँगरेज़ी शासन की शरण लेता हूँ। अँगरेज़ों ने उसे लेकर सेंट हेलना नामक द्वीप में आजन्म बंदी कर दिया।

—राधामोहन गोकुलजी

पाठ-सहायक

गरुड़ध्वज—गरुड़ या उकाब के चिह्नवाला झंडा, **एकाकी**—अकेले, **आतंक**—रोब, दबदबा, भय, **स्तंभ**—खंभा, **रजवाड़े**—देखो किस प्रकार बना है (राज्यवाले), इसी प्रकार फुलवाड़ी। **वाहिनी**—नदी, सेना, **सीमांतस्थ**—(सीमा + अंत + स्थ) सीमा के अंत पर स्थित, **पेशवाज़**—नाचने के वस्त्र, **चुटीला**—चोटवाला—इसी प्रकार **नुकीला**—आदि शब्द देखो, **निविड**—घना, **समवेत**—एकत्र, मिश्रित।

अभ्यास

१—वाटरलू के युद्ध का क्या मुख्य कारण था, स्पष्ट रूप से लिखो।

२—यह युद्ध किनके बीच में हुआ, इसमें अँगरेज़ों ने क्या भाग लिया और उनका कितना व्यय हुआ?

३—नेपोलियन क्यों हार गया, और उसे क्या परिणाम मिला?

४—उन वाक्यों को यहाँ से चुनो जिनसे नेपोलियन एवं उसके फरासीसी सिपाहियों की वीरता प्रकट होती है।

५—इसी युद्ध को संक्षेप करके एक कहानी के रूप में लिखो।

६—अपने को नेपोलियन मान कर बताओ इस युद्ध मे तुम कब क्या करते ?

७—अपने वाक्यों मे प्रयुक्त करो और भावार्थ लिखो तथा भिन्न भिन्न अर्थ बताओ—

कूच करना, भाग्य का निपटारा होना, दंग रह जाना, अपनी आयु आप मरे, दमामा कूटना, आँखे खुलना।

८—नेपोलियन का चरित्र यहाँ तुम्हें कैसा दिखलाई पडता है ?

९—सविग्रह समास लिखो और संधि-विच्छेद करो—

जनपदस्वत्वापहारी, कृतसकल्प, सीमातस्थ, कुलागार, अस्ताचलावलंबी, उत्तराधिकारी।

१०—मूल शब्द बताओ और उनसे अन्य प्रकार की सज्ञाएँ एव विशेषण बनाओ—

नैराश्य, वाहिनी, ससैन्य, उपकूल, विजयिनी।

११—प्रथम अनुच्छेद का वाक्य विग्रह करो और उसकी क्रियाओ की पद-व्याख्या भी लिखो।

संकेत—

१—नेपोलियन का चित्र दिखा उसकी वीरता के दो एक अन्य उदाहरण देना।

२—नेपोलियन की सक्षिप्त जीवनी बताना, तथा इस युद्ध के परिणाम पर प्रकाश डालना।

(१५) सच्ची मित्रता

यूनान देश मे पिथागोरस नाम का एक प्रसिद्ध दार्शनिक विद्वान् हो गया है, उसकी शिक्षा के स्वीकार करनेवालो का नवीन संप्रदाय ही प्राचीन काल में उस देश मे प्रचलित हो गया था। पिथागोरस के अनुयायी लोगों के सिद्धांत अत्यंत उत्तम और अनुकरणीय थे। स्थूलतया उन सिद्धांतो का मर्म यह था—"शारीरिक शत्रुओं (इंद्रियादि) का, विशेष कर क्रोध का दमन करो, जो कुछ पीड़ा सहनी पड़े धैर्य से यह मानके उसे सहन करो कि इस प्रकार के इंद्रिय-निग्रह से देवताओं के निकट पहुँचना सहज होगा, मृत्यु शरीर-रूप कारागार से मुक्ति-प्राप्ति का साधन है, कुकर्मियों की आत्मा नीच जंतुओं और पशुओं में संक्रांत होती है, तथा सत्कर्मियों की आत्मा निर्मल होके क्रमश: उन्नत होती जाती है।"

इस मत के स्वीकार करनेवाले दो मित्र ख्रीष्ट से ४०० वर्ष पूर्व सिसली द्वीप की राजधानी सिराक्यूज़ नामक नगर में बसते थे। यह नगर उस समय मे एक समृद्धिशाली राज्य था और उसमे विद्या का यथेष्ट प्रचार था।

वहाँ के तत्कालीन राजा का नाम डायोनीशियस् था। यह राजा एक योग्य व्यक्ति तो अवश्य था, परन्तु उसके स्वभाव

मे एक प्रकार की अद्‌भुत चंचलता और क्रूरता भी थी। पहले तो वह एक साधारण लेखक का कार्य करता था फिर उसने लेखनी छोड़ तलवार हाथ मे उठाई। सिपाही बन, क्रमशः उन्नति करके वह सेनापति बन गया और कार्थेज (अफ्रीका महाद्वीप मे एक प्राचीन समृद्ध नगर था) निवासियों के साथ समर मे विजयी होने के कारण उसका प्रभाव इतना अधिक बढ़ गया कि वह सिरांक्यूज़ के राजसिंहासन का अनायास ही अधिकारी बन बैठा। अब डायोनीशियस् के बल, प्रताप और गर्व आदि का ठिकाना ही न रहा। गोस्वामी तुलसीदास जी ने बहुत ठीक कहा है—

नहिँ कोउ अस जनमा जग माहीं।
प्रभुता पाइ जाहि मद नाहीं॥

यद्यपि यह राजा विद्वान्, विचारशील और चतुर था, तथापि उसकी दशा के अनुसार उसका स्वभाव क्रूर और अविश्वासी होगया था। उसने अपने राज्य में एक ऐसा कारागार बनवाया था जहाँ से वह कैदियों के पारस्परिक वार्तालाप को गुप्त रीति से सुन सकता था। प्रजा की ओर से उसे इतना अविश्वास था कि उसने अपने शयनागार के चारो ओर चौड़ा खाई खुदवा रक्खी थी और खाई पर के पुल को स्वयं अपने हाथ से प्रतिदिन खोलता और बंद करता था। डैमोक्लीज नामक एक व्यक्ति ने यह इच्छा प्रकट की थी कि मुझे एक ही दिन

के लिये राजा डायोनीशियस् का पद मिल जाता तो अच्छा होता। डायोनीशियस् ने उसकी इच्छा पूर्ण कर दी।

डैमोक्लोज़ ने देखा कि इंद्रियो के लुभानेवाले सभी सामान उसके सामने रक्खे हैं, यथा—स्वादिष्ट भोजन, अपूर्व मदिरा, सुगंधित पुष्प तथा और और गंधद्रव्य, गीत, वाद्य आदि सब कुछ है, किन्तु उसके शिर पर एक तलवार लटक रही है जिसकी नोक प्रायः उसके शिर को स्पर्श-सा कर रही है; परन्तु बँधी हुई है घोड़े के केवल एक-पतले बाल से। डायोनीशियस्-सदृश स्वयं अधिकार पाये हुए राजाओं की दशा को दिखाने के लिये यह चरित्र रचा गया था। मानो राजा ने डैमोक्लोज़ को यह शिक्षा इससे दी थी कि सब सुख-समाज विपदाक्रांत होने के कारण दुःख-स्वरूप ही है, क्या जाने कब हमसे छिन जावे, स्थिरता किसी में भी नहीं है।

एक नाई ने अभिमान किया कि वह राजा के गले पर प्रत्येक प्रातःकाल छुरा लेके खड़ा होता है, सो डायोनीशियस् ने उसका प्राण ही लेके छोड़ा। पहले तो कुछ दिन वह अपनी अल्पवयस्का कन्याओं से दाढ़ी बनवाता रहा, पीछे से उनका भी उसे अविश्वास हो चला सो उसने अपनी दाढ़ी के बाल ही जलवा दिये। इस राजा ने एंटिफ़ोन नामक एक पुरुष से पूछा कि सबसे उत्तम जाति का पीतल कौन-सा है? एंटिफ़ान ने सादगी से उत्तर दिया कि सबसे उत्तम जाति का पीतल वह है जिसके द्वारा हार्मोडियस और एरिस्टोजिटन की

मूर्तियाँ बनाई गई थीं। हार्मोडियस और एरिस्टाजिटन एथेंस-निवासी थे जिन्होंने पिसिस्ट्रेट्स नामक क्रूर राजा का वध किया था। इस उत्तर पर अप्रसन्न होके डायोनीशियस् ने एंटिफ़ोन को मरवा डाला।

राजा डायोनीशियस् ने एक कविता रची थी और—

"निज कवित्व केहि लाग न नीका।
सरस होय अथवा अति फीका"॥

के अनुसार उसे वह अपूर्व रचना समझता था। राजा ने फ़िलोक्जेनस नाम एक दार्शनिक को अपनी रचना सुनाई। जब दार्शनिक ने उस कविता में दोष-प्रदर्शन किया तो राजा ने अप्रसन्न होके उसे अँधेरे कारागार में बंद कर दिया। कुछ दिन पीछे राजा ने एक और कविता रची और अपने मानसिक संतोष की आशा से फ़िलोक्जेनस को अपने समीप बुलाके फिर उसे अपनी रचना सुनाई और चाहा कि उसकी रचना की कुछ प्रशंसा की जाय। परिणाम मे उस दार्शनिक ने रुखाई के साथ अपने पहरू सिपाहियों से कहा कि मुझे जहाँ से ले आये हो वहीं ले चलो। अब की बार डायोनीशियस् की बुद्धि ठिकाने आ गई, और उसने हँस के दार्शनिक को क्षमा प्रदान कर दी।

ऐसे स्वेच्छाचारी राजा के राज्य मे पिथियस नामक पिथागोरस के पंथ का एक अनुयायी व्यक्ति रहता था। किसी कारण से राजा ने अप्रसन्न होके पिथियस के वध की आज्ञा

दे दो। पिथियस ने प्रार्थना की कि उसे यूनान देश में कुछ अपनी भूसंपत्ति का बँटवारा करना है और अपने इष्ट-मित्रों से मिलना भा है; अतएव उसे देश मे जाने की आज्ञा दो जाय, पिथियस ने नियत समय पर लौट आके फाँसी पर चढ़ने की प्रतिज्ञा भी की।

डायोनीशियस् को उसकी बात पर विश्वास न हुआ और उसने समझा कि पिथियस का प्राण-दंड से बचने के लिये यह एक बहाना-मात्र है। जब पिथियस ने अपने मित्र डेमन को राजा के समक्ष उपस्थित किया और डेमन ने यह बात स्वीकार कर ली कि यदि नियत समय पर पिथियस न लौटेगा तो वह स्वयं उसके स्थान पर प्राण-दंड भोगेगा तब राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ। दोनों मित्रों के पारस्परिक व्यवहार की परीक्षा लेने के लिये अंत मे राजा ने उनकी बात मान ली और पिथियस को देश में जाने की आज्ञा दो।

पिथियस सिसली द्वीप से बाहर यूनान को चला गया। और उसकी अनुपस्थिति मे डेमन पर राजा ने कड़ा पहरा बिठला दिया जिसमें वह भाग न जाय। डेमन अपने सब कार्य्यों को यथापूर्व करता रहता था और सदा प्रसन्न भी दिखलाई देता था। लोगों से विदित होता था कि मानो डेमन को इस बात का पक्का भरोसा था कि पिथियस नियत समय पर अवश्य ही लौट आवेगा।

निदान राजा और प्रजा के सभी लोग डेमन की इस वीरता

और विश्वास पर अत्यंत आश्चर्य से भरे हुए थे; परंतु उन्हे यही अनुमान होता था कि पिथियस अब अपने प्राण गँवाने के लिये फिर लौट के सिराक्यूज़ न आवेगा और उसके स्थान पर डेमन को ही अपने प्राण देने होंगे।

होते होते पिथियस के प्राण-दंड का नियत समय आ पहुँचा, परंतु डेमन के मुख पर किसी प्रकार भी चिंता, भय, घवराहट आदि के चिह्न दिखाई न पड़े। डेमन को विश्वास था कि पिथियस यथासमय अवश्य आके उपस्थित हो जायगा। इतना ही नहीं, किंतु यदि किसी अज्ञात कारण-वश पिथियस उपस्थित न हो सका तो वह बड़ी प्रसन्नता से निज मित्र के स्थान पर प्राणत्याग के लिये प्रस्तुत था।

नियत समय पर उपस्थित होने मे पिथियस का दैवात् कुछ विलंब हुआ और डायोनीशियस् की कठोर आज्ञा के अनुसार डेमन पकड़के वध-स्थान पर दंड भुगतने के लिये पहुँचाया गया। डेमन ने इस बात पर संतोष ही प्रकट किया कि मेरे प्राण-दान के द्वारा यदि मेरे प्रिय मित्र पिथियस के प्राण बच जाते हैं तो मेरा अहोभाग्य है। उसकी वीरता पर सिराक्यूज़ के अधिकारी-वर्गों तथा निवासियों को बहुत अधिक विस्मय हुआ।

वास्तव मे पिथियस के यथासमय न पहुँच सकने का कारण समुद्रा आँधी और तरंग था जिनके कारण जहाज़ को सिराक्यूज़ के तट पर पहुँचने मे कुछ विलम्ब हो गया।

डायोनीशियस् की आज्ञा के अनुसार लोगों ने डेमन के वध-कार्य के प्रारंभ करने का प्रयत्न किया ही था कि इसी बीच में अत्यंत शीघ्रता-पूर्वक पिथियस वहाँ आ पहुँचा। उसने घातकों को सूचना दे दी कि मैं निज अपराध के कारण प्राण-दंड भोगने के लिये उपस्थित होगया हूँ, डेमन का घात व्यर्थ के लिये मत करो।

डेमन और पिथियस ने परस्पर एक दूसरे को आलिंगन किया। पिथियस को इस बात का हर्ष था कि वह डेमन का प्राण बचाने के लिये यथासमय उपस्थित होगया, परंतु डेमन को इस बात का शोक हुआ कि क्यों पिथियस यथासमय उपस्थित होगया और उसे (डेमन को) मित्रता का परिचय पूर्णतया प्राणदंड भोगके न देने दिया। धन्य है! सच्ची मित्रता ऐसी ही होती है! जिसमे पिथागोरस-सदृश विद्वान् दार्शनिक के चलाए संप्रदाय मे ऐसा आत्मत्याग क्यों न देख पड़े।

सच्चे मित्र एक दूसरे की सहायता के लिये प्राण-त्याग को कुछ भी नहीं समझते। परंतु ऐसी मित्रता कहाँ देख पड़ती है? जहाँ सच्चा धर्म है वहाँ सर्वत्र ऐसा ही रहता है। प्राचीन काल मे और अब भी ऐसे अनूठे उदाहरण दुर्लभ नहीं हैं। मुद्राराक्षस नाटक के पाठकों को विदित होगा कि अमात्य राक्षस के परिवार की रक्षा के लिये पटने के सेठ चन्दनदास ने अपना प्राण-त्याग स्वीकार किया था और अमात्य राक्षस ने यथासमय उपस्थित हो वध्य-स्थान पर उसके प्राण बचाये थे।

डायोनोशियस् यह चरित्र देख अति विस्मित हुआ। उसने पिथियस का अपराध क्षमा कर दिया तथा स्वयं ही उन दोनो मित्रों का एक और मित्र बन गया।

—हरिमंगल मिश्र, एम० ए०

पाठ-सहायक

अल्पवयस्क—अल्प अवस्थावाला, इसी प्रकार समवयस्क, आदि, **दैवात्**—दैवयोग से, **अहोभाग्य** (अहो! + भाग्य)—धन्य भाग्य। **अमात्य**—मंत्री।

अभ्यास

१—इस कहानी का सारांश क्या है? मित्र के कर्त्तव्य क्या हैं?

२—गो० तुलसीदास ने मित्र के कर्त्तव्य रामायण में लिखे हैं, इस कथा पर उसकी वे चौपाइयाँ ढूँढो जो घटित हो सकें?

३—यहाँ जो पद्य उद्धृत किए गए हैं वे कहाँ से लिए गए हैं उनके भावार्थ लिखो।

४—इस पाठ की भाषा कैसी है उसकी विशेषतायें सोदाहरण लिखो।

५—डायोनीशियस् के चरित्र की कैसी झलक यहाँ मिलती है?

६—यहाँ से वह सूक्ष्म कथा बढाकर लिखो जिससे राजा ने एक शिक्षा दी।

७—प्रथम अनुच्छेद को संक्षेप से लिखो और उसमें दिए हुए पिथागोरस के नियम दिखलाओ।

८—'भुगतने के अर्थ' किस कारक की दशा में है, यहाँ अर्थ शब्द का प्रयोग किस अर्थ में किया गया है। इस कारक की सब विभक्तियाँ लिखो।

९—नए नए शब्द बनाकर भावार्थ प्रकट करते हुए प्रयोग करो। मुख, अन्त, स्थान, वश, कार्य।

१०—अंतर बताओ—अनुचर अनुयायी अनुगामी, सम्प्रदान, आदान, प्रदान, दान, निदान, अपादान।

संकेत—

१—मुद्राराक्षस की कथा बताना।

---

(१६) बेतार का तार

यूरोप में बिजली का सर्वप्रथम आविष्कार इटली में हुआ है। यह बात ईसा के जन्म से पूर्व की है। इस बीच में कई सदियाँ बीत गईं और बिजली की शक्ति के कई नए प्रयोग भी उद्भावित किए गए। बिजली की शक्ति से तार से ख़बर भेजना, गृह, राज-पथ और नगर आदि आलोकित करना और कल-कारख़ानों का चलना आदि के कितने ही लोकोपयोगी काम किए जाते हैं। पर बीसवीं सदी के प्रारंभ में उसकी एक अभिनव शक्ति का आविष्कार हुआ है। यह बिना तार के उसकी शक्ति का अद्भुत उपयोग है। आधुनिक विज्ञान के इस आविष्कार ने विलक्षणता की हद कर दी है। इसमें एक ख़ूबी यह भी है कि जिस इटली में सर्व-प्रथम बिजली की शक्ति आविष्कृत हुई थी वहीं इस नए आविष्कार का भी सूत्र-पात हुआ है। विज्ञानाचार्य मार्कोनी की यह उद्भावना है।

मार्कोनी के पहले उन्नीसवीं सदी के शेष भाग में, हेनरी हार्ट्ज़ नामक एक जर्मन विज्ञानवेत्ता ने बिजली की शक्ति के कई एक नूतन गुण खोज निकाले थे। बिजली की शक्ति तार में प्रवाहित न होकर भी दूरस्थ किसी वस्तु पर प्रभाव डाल सकती है। यह बात उस समय के अनेक वैज्ञानिकों को मालूम

रहने पर भी किसी ने भी उसे सिद्ध कर दिखाने का प्रयत्न न किया। हेनरी हार्ट्ज़ ने सबसे पहले इस शक्ति के प्रयोग करने का प्रयत्न किया था। उन्होंने पहले बिजली की धारा के पैदा करनेवाले एक यंत्र का आविष्कार कर उसे दिक्सूचक यंत्र से थोड़ी दूर पर तार के एक कुंडलाकृति टुकड़े को एक खंभे मे लटका दिया। इस तार के दोनो मुँह कुछ खुले रक्खे गए। इसके बाद यह दिखाई दिया कि


मार्कोनी

जितनी बार उसका पूर्वोक्त यंत्र बिजली की धारा पैदा करता है उतनी ही बार इस तार के असंबद्ध मुँह के अंतराल मे भी बिजली की धारा पैदा हो जाती है। इसके सिवा और भी कई परीक्षाओ से यह सिद्ध कर दिखाया गया कि बिना तार के भी बिजली शून्य मे प्रवाहित हो सकती है।

यह भी प्रमाणित हुआ कि वायु से भी अधिक स्वच्छ और हलके एक प्रकार के पदार्थ का स्रोत अनंत भाव से विश्व-ब्रह्मांड मे बहता रहता है परंतु वह क्या है यह बात वे निश्चित न कर सके। आधुनिक वैज्ञानिको ने उसका नाम 'ईथर' बताया है। हेनरी हार्ट्ज़ के यंत्र से उत्पन्न होनेवाली बिजली की धारा के पूर्वोक्त तार के मुँह मे देने का कारण यह

विद्यु त्तरंग-ग्राही यंत्र से संयुक्त कर दिया जाता है। आकाश-मंडल मे जो तडित्तरंगें वाहित होती रहती हैं वे उक्त तार के जाल के तंतु से टकराती हैं। उनके टकराते ही निम्नस्थ यंत्र उन्हे खींच लेता है और सांकेतिक भाषा के रूप में उन्हें रूपांतरित कर देता है। जो तार बाबू वहाँ बैठा रहता है वह उसे प्रचलित भाषा के रूप मे लिख लेता है। यह कितनी अद्भुत और आश्चर्य को बात है।

एक बार पलक मारने मे जितना समय लगता है उतने ही समय मे अमेरिका से इँग्लैंड या इँग्लैंड से जापान तक खबर पहुँच जाती है। अमेरिका या आस्ट्रेलिया में किसी विशेष घटना के घटित होने के एक घंटे बाद ही विलायत के अखबारो मे उसकी खबर छप जाती है। यह मनुष्य के बुद्धि-बल का ही प्रताप है। उसका प्रेरणा से ये नीरव, जड़, ऊँचे-ऊँचे लोहे के खम्भे तार-तंतुरूपी अपने हाथ फैलाए हमारे लिये दिग्दिगंतर से खबर ला देते हैं।

बेतार-द्वारा खबर भेजने के लिए दो बातों की आवश्यकता होती है। पहले तो आकाश-मंडल के ईथर-स्रोत मे तड़ित्तरंग पैदा करना और दूसरे उन तरंगो के आघात को प्राप्त करना। तडित्तरंग पैदा करने के लिये बहुत-से नए उपायों के उद्भावित किए जाने पर भी हेनरी हार्ट्ज का आविष्कृत स्फुलिंग उद्गमन-कारी यंत्र का ही उपयोग सर्वत्र होता है। उसमें कई विशेष गुण हैं। यह बात अवश्य है कि अब उक्त मूल-यंत्र बहुत

तरह से संस्कृत और शक्तिशाली बना लिया गया है। हार्ट्ज़ साहब ने तो केवल उसे कुछ या बहुत तडित्तरंग दूर भेजने के लिये बनाया था। अब तो किसी वायर्लेस[1] स्टेशन मे उत्पन्न की हुई तडित्तरंग १२,००० मील तक प्रवाहित होती है।

स्थल तो स्थल ही है, अनंत समुद्र के वक्षःस्थल पर तैरने-वाले जहाज़ों में भी बेतार की बिजली से देशों का हाल-चाल नियमित रूप से पहुँचता है और जहाज के प्रेस मे छप जाता है। सबेरे चाय पीने के साथ ही यात्रियो का उसे अख़बार में पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त हो जाता है। आजकल कई जहाज़ो मे आटोमेटिक प्रेस हो गए हैं, जिनमे किसी भी सांकेतिक भाषा मे भेजी गई ख़बर अपने आप छप जाती है।

बेतार की बिजली से सांकेतिक भाषा मे ख़बर भेजकर मनुष्य आनंदित और विस्मित तो अवश्य हुआ, परंतु उसके विस्मय का तब ठिकाना ही न रहा जब उसने बेतार की बिजली से बातचीत करने की भी तैयारी की। अब घर बैठे कोई व्योमविहारी, रेल-यात्री अथवा समुद्र-यात्री अपने स्त्री-पुत्रादि से आलाप का सुख प्राप्त कर सकता है और इसके लिये बहुत व्यय भी नही करना पड़ता है। साधारण गृहस्थ भी अपने घर मे यह यंत्र लगा सकते हैं। इसके लिये कोई विशेष स्थान अथवा विशेष सामग्री की आवश्यकता नही पड़ती।

शहर के मकानो मे लगी हुई बिजली की बत्ती केवल

१—अँगरेज़ी —वायर = तार + लेस = हीन

प्रकाश देने को ही सामर्थ्य नहीं रखती, वरन् एक और अद्भुत शक्ति उसमें सन्निहित रहती है। बेतार के टेलीफोन-यंत्र में साधारण बिजली की बत्ती की तरह काँच के फ़ानूस से आवृत बिजली के तार-तं‌ लगे रहते हैं। वह फ़ानूस देखने में साधारण बिजली-बत्ती के फ़ानूस से कुछ बड़ा रहता है। भेद इतना ही है कि उसके भीतर के तार-तं‌ में धातुम‌ पत्र का एक और टुकड़ा लगा रहता है। इसी बत्ती के भीतर से प्रबल तड़ित्तरंग प्रवाहित होकर शब्द को दूर दूरांतर में पहुँचा देती है।

तार और धातु-पत्र के संयोग से बिजली की बत्ती का यह आश्चर्य रूपान्तर मानव-जाति की एक अद्भुत कीर्ति है। इसे आकाश में बहती हुई बिजली को आकर्षण करने के लिये मार्कोनी के गगनचुंबी खंभों और सुदीर्घ तार-तंतुओं की आवश्यकता नहीं होती। केवल गोलाकार रूप में कई एक तारों का एक लकड़ी के खंभे पर लटका देने से आकाश में प्रवाहित होनेवाली बिजली को उस बिजली-बत्ती से संयुक्त बेतार का टेलीफोन चुंबक के सदृश खींच लेता है।

लकड़ी के खंभे पर लटकते हुए गोलाकृति तारों से इस टेलीफोन का संबंध होना आवश्यक है। यदि वह बिजली की बत्ती से संयुक्त बेतार के टेलीफोन के साथ लकड़ी के फ़्रेम[1] में लपेटे हुए कुछ तार का संग्रह करके मोटर-गाड़ी में रखकर

१—घेरा (अँगरेज़ी)

मण किया जाय तो सैर करते हुए भी शहर की ख़बरें
ालूम की जा सकती हैं। लंदन अथवा न्यूयार्क के बड़े बड़े
मी लोग जिनकी डाक सदैव चारों तरफ़ से आती रहती
, अपने मोटर में यह यंत्र लगवा लेते हैं।

बेतार-द्वारा ख़बर के यंत्र से एक और महोपकार सिद्ध
ाता है। समुद्र के किनारे से आस-पास के जहाज़ों को इस
त्र के द्वारा यथार्थ समय भेजा जाता है और तदनुसार उनकी
ड़ियाँ ठीक कर ली जाती हैं। जहाज़ों को तूफ़ान आदि की
ा सूचना इसी यंत्र के द्वारा दे दी जाती है।

—सकलित

('सुधा' से)

पाठ-सहायक

सूत्र-पात—प्रारंभ, उद्भावना उत्+भावना—उत्पत्ति, उपज, आविष्कार, नाविक—(नौ-नौका से) मल्लाह, विद्युद्वाही—बिजली को ले जानेवाला, स्रोत—सोता स्फुलिंग—चिनगारी, उद्गमनकारी—ऊपर चलानेवाले, आवृत—घिरा हुआ।

अभ्यास

१—बेतार के तार से क्या तात्पर्य है? इसका आविष्कारक कौन है?

२—इससे क्या लाभ ससार को हुआ है, इसका उपयोग कैसे होता है?

३—बेतार के तार का यंत्र कैसा होता है और किस प्रकार उससे ख़बरें ली या दी जाती हैं?

४—मार्कोनी के विषय में यहाँ क्या कहा गया है?

५—विशेषण एवं अन्य प्रकार की संज्ञाएँ बनाकर प्रयुक्त करो—

यूरोप, प्रारंभिक, उपयोग, शक्ति, गुण।

६—अंतिम अनुच्छेद की क्रियाएँ चुनो और उनको विधिक्रियाओं के समान प्रयुक्त करो।

७—इस पाठ का सारांश लिखो और उस पर अपने विचार प्रकट करो।

८—स्पष्टरूप से भावार्थ लिखो—

यह मनुष्य के बुद्धि बल ..खबर ला देते हैं। (पृ० १४०)

९—सांकेतिक भाषा से क्या समझते हो, तुम्हारी भाषा कैसी है?

१०—इस पाठ से बिजली के पर्यायवाची शब्द चुनो।

संकेत—

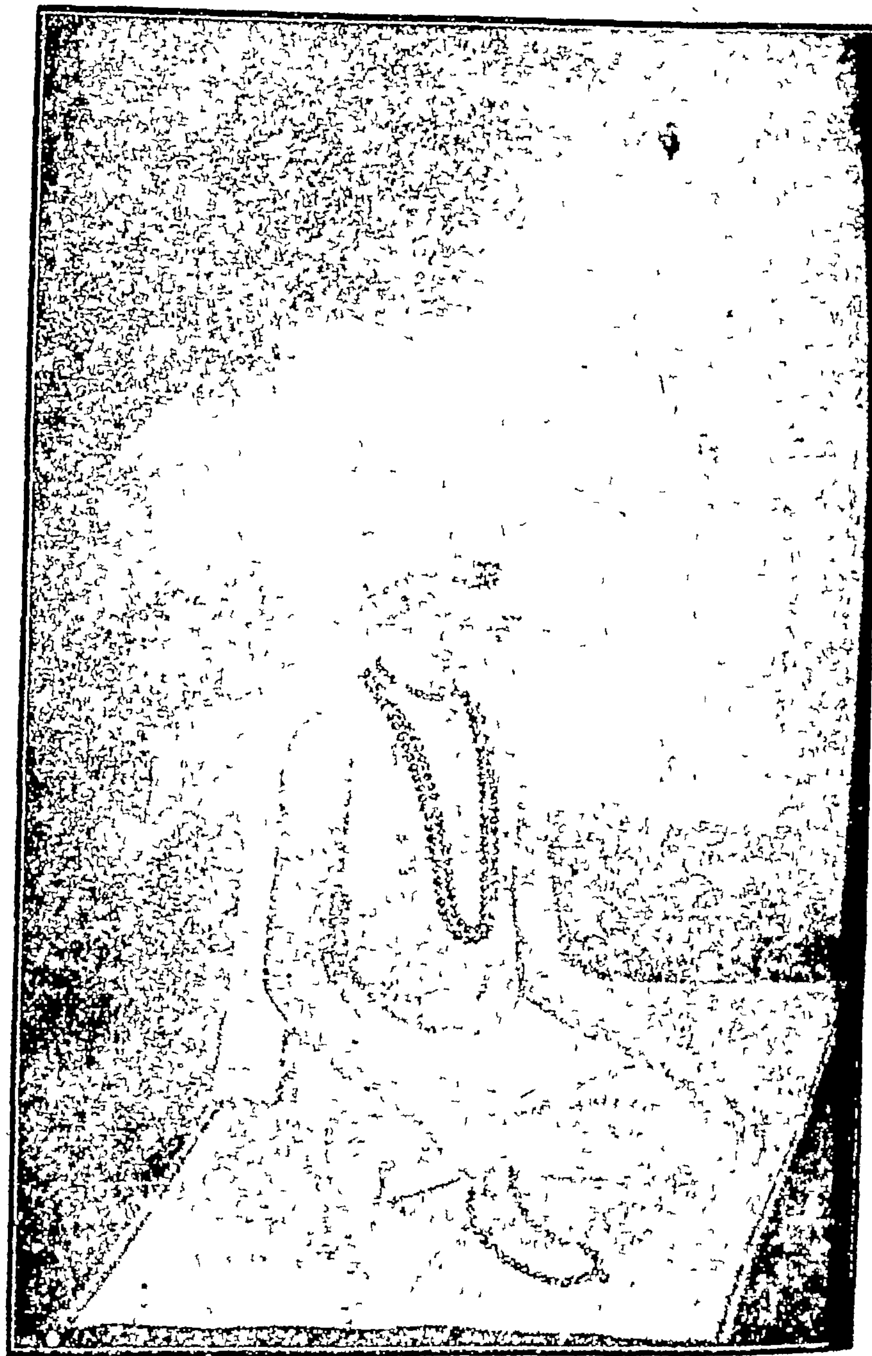
१—मार्कोनी की जीवनी संक्षेप में बताना।

२—सांकेतिक भाषा और साधारण भाषा का परिचय देना।

(१७) तुलसी-रचना

१—सतसई-सुमन

ऊँचो जाति पपाहरा, पियत न नीचो नीर।
कै जाँचै घनस्याम सों, कै दुख सहै सरीर ॥१॥
'तुलसी' मीठे बचन तें, सुख उपजत चहुँ ओर।
बसीकरन यह मंत्र है, परिहरु बचन कठोर ॥२॥
'तुलसी' संत सुअंबु तरु, फूलि फरहिं पर-हेत।
इत ते ये पाहन हनत, उत ते वे फल देत ॥३॥
काम, क्रोध, मद, लोभ, की जौ लौं मन में खान।
तौ लौं पंडित-मूरखौ, 'तुलसी' एक समान ॥४॥
दुरजन दरपन-सम सदा, करि देखौ हिय गौर।
सनमुख की गति और है, बिमुख भये कछु और ॥५॥
'तुलसी' साथी बिपति के, विद्या, विनय, विवेक।
साहस, सुकृत, सुसत्यव्रत, राम-भरोसो एक ॥६॥
'तुलसी' असमय के सखा, साहस-धर्म-विचार।
सुकृती, सील, सुभाव रिजु, राम चरन-आधार ॥७॥
'तुलसी' जे कीरति चहहिं, पर-कीरति को खोय।
तिनके मुख मसि लागि है, मिटै न मरिहैं धोय ॥८॥



गोस्वामी तुलसीदास

नीच चंग-सम जानिए, सुनि लखि 'तुलसीदास'।
ढीलि देत महि गिरि परत, खैंचत चढ़त अकास ॥९॥
मुखिया मुख सों चाहिए, खान-पान को एक।
पालै-पोसै सकल अँग, 'तुलसी' सहित विवेक ॥१०॥
'तुलसी' पावस के समै, धरी कोकिला मौन।
अब तौ दादुर बोलि हैं, हमैं पूछिहै कौन ॥११॥
सात स्वर्ग-अपवर्ग-सुख, धरिय तुला एक अंग।
तुलै न ताहि सकल मिलि, जो सुख लव सतसंग ॥१२॥
आवत ही हरषै नहीं, नैनन नहीं सनेह।
'तुलसी' तहाँ न जाइए, कंचन बरसै मेह ॥१३॥
'तुलसी' कबहुँ न त्यागिए, अपने कुल की रीति।
लायक ही सों कीजिए, ब्याह, बैर, अरु प्रीति ॥१४॥
'तुलसी' जस भवितव्यता, तैसी मिलै सहाय।
आपु न आवै ताहि पै, ताहि तहाँ लै जाय ॥१५॥

('तुलसीसतसई' से)

पाठ-सहायक

परिहरु छोड़ दो, रिजु (ऋजु)—सीधा, चंग—पतंग, ढीलि देत—डोरी को ढीला करना, त्याग देना, उदासीन होना खैंचत—डोरी खींचना, पास रखना, अपनी ओर लाना, कंचन—सोना. सुवर्ण।

अभ्यास

१—ऐसे दोहे चुनो जिनका प्रयोग लोकोक्तियों के समान होता है।

२—क्या मुख्य तात्पर्य है—कैसे व्यक्ति पर किस समय घटित हो सकते हैं—

दोहा नं० १, ८, ११, १३।

३ – दोहा नं० ३, ५, ९ का सान्वय भावार्थ समझाओ—और बताओ इनमें काव्य-संबंधी क्या विशेषता है ?

४ – शुद्ध शब्द बताओ—

सात, पपीहरा, र अंबु, हिय, कीरति।

५— क्या अतर है, सोदाहरण स्पष्ट करो—

अंबु, अंब, अंबा, समान, सामान, समान, लखि, बिलखि, लिखि।

६—यहाँ आए हुए उर्दू-शब्द चुनो और उनके स्थान पर हिंदी-शब्द प्रयुक्त करो।

७—पर्यायवाची शब्द लिखो—

नीर, पाहन, कोकिला, नैनन, आकाश।

८—भिन्न भिन्न अर्थों में प्रयुक्त करो—

और, गति, सील, कुल।

९—भिन्न भिन्न शब्द उपसर्गादि लगाकर बनाओ और अथ बताते हुए प्रयुक्त करो—

सकल, मुख, कुल, फल, समान।

१०—खड़ी बोली में रूपातरित करके पदव्याख्या करो—
पियत, फरहि, जौ लौं, खोय, लखि, खैंचत, धरिय, ताहि।

११—कौन कौन से दोहे तुम्हें बहुत पसद हैं, और क्यों ?

संकेत—

१—इसी प्रकार तुलसीदास के अन्य सदर दोहे सुनना सुनाना।

२—अन्योक्ति एव व्यग्य का परिचय देना।

२—शिव-बरात

दो०—लगे सँवारन सकल सुर, वाहन विविध विमान।
होहिं सगुन मङ्गल सुभग, करहिं अप्सरा गान॥

चौ०—सिवहि संभुगन करहिं सिंगारा।
जटा-मुकुट अहि-मौर सँवारा॥
कुंडल-कंकन पहिरे व्याला।
तन विभूति पट केहरि छाला॥
ससि ललाट, सुंदर सिर गंगा।
नयन तीन, उपवीत-भुजंगा॥
गरल कंठ, उर नर-सिर-माला।
असिव वेष सिवधाम कृपाला॥
कर त्रिसूल अरु डँवरु विराजा।
चले विसभ चढ़ि बाजहिं बाजा॥
देखि सिवहिं सुर-तिय मुसुकाहीं।
बर-लायक दुलहिन जग नाहीं॥
विष्णु, विरंचि आदि सुरत्राता।
चढ़ि चढ़ि वाहन चले बराता॥
सुर-समाज सब भाँति अनूपा।
नहिं बरात दूलह-अनुरूपा॥

दो०—विष्णु कहा अस विहँसि तब, बोलि सकल दिसिराज।
बिलग बिलग होइ चलहु सब, निज निज सहित समाज॥

चौ०—बर अनुहारि बरात न भाई।
हँसी करैहहु पर-पुर जाई॥
बिष्णु-वचन सुनि सुर मुसुकाने।
निज निज सेन-सहित बिलगाने॥
मन ही मन महेस मुसुकाहीं।
हरि के व्यंग वचन नहिं जाहीं॥
अति प्रिय बचन सुनत प्रिय केरे।
भृंगहि प्रेरि सकल गन टेरे॥
सिव-अनुसासन सुनि सब आए।
प्रभु-पद-जलज सीस तिन्ह नाए॥
नाना वाहन नाना बेखा।
बिहँसे सिव-समाज निज देखा॥
कोउ मुख-हीन बिपुलमुख काहू।
बिनु पद-कर कोउ बहु-पद-बाहू॥
बिपुल नयन कोउ नयन-बिहीना।
रिष्ट-पुष्ट कोउ अति तन खीना॥

छंद—तन खीन कोउ अति पीन पावन कोउ अपावन गति धरे।
भूषन कराल कपाल कर सब सद्य सोनित तन भरे॥
खर स्वान-सुअर-सृगाल-मुख गन बेष अगनित को गनै।
बहु जिनिस प्रेत-पिसाच जोगि-जमात बरनत नहिं बनै॥

सो०—नाचहिं गावहिं गीत, परम तरंगी भूत सब।
देखत अति बिपरीत, बोलहिं बचन बिचित्र बिधि॥

चौ०—जस दूलह तस बनी बराता।
कौतुक विविध होहिं मग जाता॥
इहाँ हिमाचल रचेउ बिताना।
अति विचित्र नहिं जाइ बखाना॥
सैल सकल जहँ लगि जग माहीं।
लघु-बिसाल नहिं बरनि सिराहीं॥
वन, सागर सब नदी, तलावा।
हिमगिरि सब कहँ नेवति पठावा॥
काम-रूप सुंदर-तनु-धारी
सहित समाज सोह वर नारी॥
आए सकल हिमाचल-गेहा।
गावहिं मंगल सहित-सनेहा॥
प्रथमहिं गिरि बहु गृह सँवराए।
जथा जोग जहँ तहँ सब छाए॥
पुर-सोभा अवलोकि सुहाई।
लागै लघु बिरंचि निपुनाई॥
छंद—लघु लागि बिधि की निपुनता अवलोकि पुर-सोभा सही।
वन, बाग, कूप, तड़ाग, सरिता सुभग सब सक को कही॥
मंगल विपुल तोरन-पताका-केतु गृह गृह सोहहीं।
बनिता-पुरुष सुंदर चतुर छवि देखि मुनि-मन मोहहीं॥
दो०—जगदंबा जहँ अवतरी, सो पुर बरनि न जाइ।
रिद्धि-सिद्धि संपत्ति सुखद, नित नूतन अधिकाइ॥

चौ०—नगर निकट बरात सुनि आई।
पुर खरभर सोभा अधिकाई॥
करि बनाव सब वाहन नाना।
चले लेन सादर अगवाना॥
हिय हरषे सुर-सेन निहारी।
हरिहिं देखि अति भए सुखारी॥
सिव-समाज जब देखन लागे।
बिडरि चले बाहन सब भागे॥
धरि धीरज तहँ रहे सयाने।
बालक सब लै जीव पराने॥
गए भवन पूछहिं पितु-माता।
कहहिं वचन भय-कंपित गाता॥
कहिय कहा कहि जाइ न बाता।
जम कर धारि किधौं बरिआता॥
बर बौराह बरद असवारा।
ब्याल-कपाल बिभूषण छारा॥

छंद—तन छार ब्याल-कपाल भूषन नगन जटिल भयंकरा।
सँग भूत-प्रेत-पिसाच-जोगिनि बिकट मुख रजनीचरा॥
जो जियत रहिहिं बरात देखत पुन्य बड़ तेहिकर सही।
देखिहि सो उमा-बिबाह घर घर बात अस लरिकन कही॥

दो०—समुझि महेस-समाज सब, जननि-जनक मुसुकाहिं।
बाल बुझाए बिबिध बिधि, निडर होहु डर नाहिं॥

(रामायण से) —गोस्वामी तुलसीदास

पाठ-सहायक

उपवीत—जनेऊ, असिव—अमंगलकारी, सिव-धाम—मंगल-मय, बिरंचि—ब्रह्मा, त्राता—रक्षक, अनुहारी—अनुकूल, खीन—क्षीण, पीन—स्थूल, जिनिस—प्रकार, तरंगी—मौजी।

अभ्यास

१—शिव जी का कैसा शृंगार यहाँ कहा गया है। उनके रूप में और हृदय में क्या विरोध है?

२—उनकी बरात के कितने रूप हैं? सुर-समाज और शिव-समाज का अंतर बताओ।

३—नगेश-नगर के निकट पहुँचने पर बरात के दर्शक बालकों की क्या दशा हुई? क्यों?

४—विष्णु ने क्या मज़ाक़ किया? शिव ने उसके फल-स्वरूप में क्या किया?

५—"जस दूलह तस बनी बराता" का क्या भाव है, इसका प्रयोग लोकोक्ति के समान करो।

६—हिमाचल के नगर का वर्णन संक्षेप में लिखो।

७—यहाँ जो छन्द आए हैं उनमें क्या विशेषता देख पड़ती है? वैसी विशेषता छंदों में तुलसी ने सर्वत्र की है या नहीं दो एक उदाहरण दो।

८—खड़ी बोली में रूपांतरित करो—
टेरे, करैहहु, बिलगाने, तिन्ह, सिराहीं।

९—कैसी क्रियाएँ हैं—व्याख्या कर इनके रूप लिखो—
सामान्य वर्तमान, विधि और पूर्णभूत—
सँवराए, पराने, करैहहु, देखिहि।

१०—कैसी संज्ञाएँ हैं विशेषताएँ लिखो—इनसे विशेषण बनाओ और प्रयोग करो—
बनाव, निपुनाई, बरात, समाज।

११—किसी बरात का तुम भी सुंदर वर्णन करो और किसी पत्रिका में छपने के लिये भेजो।

१२—छं० नं० २ को खड़ी बोली में अनूदित करो।

संकेत—

१—इस कविता को समझाकर रस का ज्ञान कराना।

२—व्यंग्य क्या है इसका परिचय देना।

—

(१८) संभाषण में शिष्टाचार

मनुष्य की विद्या, बुद्धि और उसके स्वभाव का पता उसकी बात-चीत से लग जाता है, इसलिये उसे अपने विचारों के प्रकट करने के लिये बातचीत में बड़ी सावधानी रखनी चाहिए। संभाषण में सावधानी की आवश्यकता इसलिये भी है कि बहुधा बात ही बात मे कर्ष बढ़ जाता है। यथार्थ में मनुष्य की बात-चीत ही उसके कार्यों की सफलता अथवा असफलता का कारण होती है। किसी कवि ने कहा है—'कहै कृपाराम सब सीखिबो निकाम एक बोलिबो न सीखो सब सीखो गयो धूर में।' जिसकी बात-चीत मे सभ्यता वा शिष्टाचार का अभाव रहता है उससे लोग बात-चीत नहीं करना चाहते।

संभाषण करते समय श्रोता की मर्यादा के अनुरूप 'तुम' 'आप' अथवा 'श्रीमान्' का उपयोग करना चाहिए, इनमें 'आप' शब्द इतना व्यापक है कि वह 'तुम' और 'श्रीमान्' का भी स्थान ग्रहण कर सकता है। 'तुम' का उपयोग अत्यंत साधारण स्थिति के लोगों के लिये या अधिक घनिष्ट परिचयवाले समवयस्क के लिये और 'श्रीमान्' का उपयोग अत्यंत प्रतिष्ठित महानुभावों के लिये किया जाय।

बहुत ही छोटे लड़कों को छोड़कर और किसी के लिये भी 'तू' का उपयोग करना उचित नहीं। किसी के प्रश्न के

उत्तर देने में 'हाँ' या 'नहीं' के लिये केवल सिर हिलाना असभ्यता है। इसके बदले में 'जी हाँ' या 'जी नहीं' कहने की बड़ी आवश्यकता है। बातचीत इस प्रकार रुक रुक कर न की जाय कि जिससे 'श्रोता' को उकताहट मालूम पड़ने लगे।

बातचीत करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि बोलनेवाला बहुत देर तक अपनी ही बात न सुनाता रहे, जिससे दूसरों को बोलने का अवसर ही न मिले और वे बोलनेवाले की बक-बक से ऊब जायँ। बातचीत बहुधा संवाद के रूप में होनी चाहिए, जिससे श्रोता और वक्ता—दोनों का अनुराग संभाषण में बना रहे।

सभ्य वार्तालाप में इस बात का ध्यान रक्खा जाता है कि किसी के जी को दुखानेवाली कोई बात न कही जाय। संभाषण को, जहाँ तक हो सके, कटाक्ष, आक्षेप, व्यंग्य, उपालंभ और अश्लीलता से मुक्त रखना चाहिए। अधिकार की अहंमन्यता में भी किसी के लिये कटु शब्द का प्रयोग करना अपने को असभ्य सिद्ध करना है।

किसी नए व्यक्ति के विषय में परिचय प्राप्त करने के लिये बात बात में उत्सुकता न प्रकट की जाय और जब तक बड़ी आवश्यकता न हो किसी की जाति, वेतन, वंशावली, वय आदि न पूछा जाय। किसी से कुछ पूछते समय प्रश्नों की झड़ी लगाना उचित नहीं। यदि कोई सज्जन आपका प्रश्न सुनकर भी उसका उत्तर न दें तो उसके लिये उनसे अधिक आग्रह न

करना चाहिए। हाँ यदि ऐसा जान पड़े कि वह उत्तर देना भूल गया है तो अवश्य ही नम्रता-पूर्वक दूसरी बार उससे प्रश्न किया जाय।

बातचीत में आत्म-प्रशंसा को यथा-संभव दूर ही रखना चाहिए। साथ ही बात-चीत का ढंग भी ऐसा न हो कि श्रोता को उसमें अपने अपमान की झलक दिखाई दे। बात-चीत में विनोद बहुत ही आनंद लाता है, परंतु सदैव हँसी-ठट्ठा ही करने की टेव वक्ता और श्रोता दोनों के लिए हानि-कारक है। संभाषण में उपमा और रूपक का प्रयोग भी बड़ी सावधानी से किया जाय, क्योंकि इसमें बहुधा अर्थ का अनर्थ हो जाने का डर रहता है। यदि वार्तालाप करते समय कवियों के छोटे-छोटे पद्यों और कहावतों का उपयोग किया जाय तो इनसे बोल-चाल में सरलता और प्रामाणिकता आ जाती है। तथापि 'अति सबको बुरी होती है'।

यदि कोई दो-चार सज्जन इकट्ठे हो किसी विषय पर बातचीत कर रहे हों तो अचानक उनके बीच में जाना अथवा उनकी बातें सुनना अशिष्टता है। ऐसे अवसर पर लोगों के पास जाकर बिना कुछ पूछे ही बात-चीत करने लगना भी अनुचित है। कभी कभी किसी मनुष्य को चुपचाप देखकर लोग उससे कुछ कहने का आग्रह करते हैं। ऐसी अवस्था में उस मनुष्य का कर्त्तव्य है कि वह कोई मनोरंजक बात या विषय छेड़कर उनकी इच्छा-पूर्ति करे।

किसी की असंभव बातें सुनकर उसकी हाँ में हाँ मिलाना तो चापलूसी, और न्याय-संगत बातें सुनकर उनका खंडन करना दुराग्रह है। लोगों को इन दोषों से बचना चाहिए। यद्यपि वार्तालाप में दूसरे के मत का समर्थन करने अथवा उसकी प्रशंसा में दो-चार शब्द कहने में चापलूसी का कुछ आभास रहता है, तथापि, इतनी 'चापलूसी' के बिना संभाषण नीरस और अप्रिय भी हो जाता है।

इसी प्रकार अपने ही मत का समर्थन करने और दूसरे के मत का खंडन करने में भी कुछ न कुछ दुराग्रह झलकता है, तो भी इतना दुराग्रह सभ्य और शिक्षित समाज में क्षंतव्य है। किसी अनुपस्थित सज्जन की अकारण निंदा करना शिष्टता के विरुद्ध है और परनिंदक को सभ्य तथा शिक्षित लोग बहुधा अनादर की दृष्टि से देखते हैं।

विद्वानों के समाज में मत-भेद होने के अनेक कारण उपस्थित होते हैं। इसलिये जब किसी के मत के खंडन करने का अवसर आवे तब बहुत ही नम्रतापूर्वक क्षमा-प्रार्थना करके उसके मत का खंडन करना चाहिए। खंडन भी ऐसी चतुराई से किया जाय कि विरुद्ध मतवाले को बुरा न लगे। बात-चीत में क्रोध के आवेग को रोकना चाहिए और यदि यह न हो सके तो उस समय मौन ही धारण करना उचित है। वचनों का उत्तर व्यंग्य में ही देना नीति की दृष्टि से अनुचित नहीं है। तथापि शिष्टाचार उन्हें कम से कम एक बार सहन करने का परामर्श देता है।

जिससे बातचीत की जाती है उसकी योग्यता का विचार करके वर्णनात्मक अथवा विचारात्मक विषय पर संभाषण किया जाय। नवयुवकों से वेदांत की चर्चा करना और वयोवृद्ध लोगों को शृंगार-रस की विशेषताएँ बताना शिष्टाचार के विरुद्ध है। सड़क पर खड़े होकर अथवा चलते हुए किसी स्त्री से (विशेषकर दूसरे घर की स्त्री से) बात-चीत करना अशिष्ट समझा जाता है।

यदि कोई मनुष्य किसी विचारात्मक कार्य में लगा हो तो उसके पास ही ज़ोर ज़ोर से बात न करना चाहिए। रोगी से अधिक समय तक बातचीत करना उसके लिए हानिकारक है और उससे उसके रोग की भयंकरता का उल्लेख करना रोग से भी अधिक भयानक है।

यदि अपने किसी अनुपस्थित मित्र या संबंधी की निंदा की जा रही हो तो निंदक को नम्रता-पूर्वक इस कार्य से विरत कर देना चाहिए, और यदि इतने पर भी अपनी बात का कोई प्रभाव निंदक पर न पड़े तो किसी बहाने से उसके पास से उठ कर चले आना उचित है। इसमें उसे अपनी मूर्खता और आपकी अप्रसन्नता का कुछ आभास मिल जायगा। जो मनुष्य स्वयं अकारण दूसरे की निंदा नहीं करता उसके सामने दूसरों को भी ऐसी निंदा करने का साहस बहुधा नहीं होता।

किसी सभा-समाज या जमाव में अपने मित्र अथवा परिचित व्यक्ति से ऐसी भाषा अथवा ऐसे शब्दों का उपयोग न

करना चाहिए, जिन्हें दूसरे न समझ सकें, अथवा जो उन्हे विचित्र जान पड़ें। ऐसे अवसर पर किसी विशेष विषय अथवा अपने ही धंधे या नौकरी की बातें करने से दूसरे लोगों को अरुचि उत्पन्न हो सकती है। यदि किसी विशेष अथवा गहन विषय पर बहुत समय तक संभाषण करने की आवश्यकता न हो तो थोड़े समय के अंतर पर विषय को बदल देना अनुचित न होगा।

बातचीत करते समय भाषा की उपयोगिता पर भी ध्यान देने की आवश्यकता है। कई लोग साधारण पढ़े-लिखे लोगों के साथ बातचीत करने मे, 'विचार-स्वातंत्र्य,' 'व्यक्तिगत आक्षेप', 'वैयक्तिक धारणा' आदि शब्दो का उपयोग करते हैं जो साधारण पढ़े-लिखे लोगो की समझ में नहीं आ सकते। इसी प्रकार पंडितो के समाज मे मनुष्य के लिये 'मानुस', माता के लिये 'महतारी', पिता के लिये 'बाप' और भोजन के लिये 'खाना' कहना असंगत है।

हिंदी-भाषी लोग बहुधा श, ष और स का अशुद्ध उच्चारण करने के लिये प्रसिद्ध हैं। इसलिये शिक्षित लोगो को इस उच्चारण-दोष से बचना चाहिए। कई 'उर्दूदाँ' सज्जन अपनी बातचीत मे सिर को 'सर', आँगन को 'सहन', बजाज को 'बज़्ज़ाज' और कलम को 'क़लम' कहकर अपनी भाषा-विज्ञता का परिचय देते हैं, जो शिक्षित हिंदी-भाषी-समाज मे उपहास-योग्य समझा जाता है।

हमारे कई हिंदी-भाषी भाई उर्दू-उच्चारण की शुद्धता के मोह में पड़कर, हिंदी के 'ज' वाले शब्दों मे 'ज़' की अशुद्ध झड़ी लगाते हैं और कदाचित् उसे अपनी उर्दूदानी का प्रमाण समझते हैं। पर यह उनकी भूल है, क्योंकि ऐसा उच्चारण अशुद्ध होने के कारण दोनों भाषा-भाषियों के द्वारा उपहास्यजनक होता है।

हमने उर्दू न जाननेवाले एक वकील महाशय को 'ज़ायदाद,' 'मज़ूर,' 'हर्ज़' और 'ताज़' कहते सुना है। कई एक महाशय तो 'मुझे ज़ल्दी घर ज़ाना है,' कह कर वकील साहब को भी मात कर देते हैं। यद्यपि हमने उपर्युक्त वकील साहब की शिष्टता के अनुरोध से उस समय उनकी भूल न बताई, पर हमें उनकी यथार्थ 'उर्दूदानी' का पता चल गया। कई लोग भूल से हिंदी के फ अक्षर को 'फ़' कहते हैं; जिसका उदाहरण उनके 'फ़ल,' 'फ़ूल' और 'फ़न्दा' कहने मे मिलता है।

शिष्ट भाषण मे इन दोषों से बचने की बड़ी आवश्यकता है। बिना उर्दू पढ़े उस भाषा के ज़, फ़, क़, और ग़ के उच्चारण करने का साहस किसी को न करना चाहिए। क्योंकि इससे शिक्षित समाज मे, विशेष कर शिक्षित मुसलमानों में, हँसी होती है। ये लोग अपने शुद्ध उच्चारण पर बड़ा गर्व करते हैं और दूसरे लोगों के अशुद्ध उच्चारण की हँसी उड़ाया करते हैं। इसके लिये सबसे उत्तम उपाय तो यही है कि उनके उर्दू-शब्दों का उच्चारण हिंदी के प्रचलित अक्षरों में किया जाय। हिंदी-लिपि मे (उर्दू के संसर्ग से) अक्षरों के नीचे जो

बिंदी लगाने की अनिष्ट प्रथा है उसी से उच्चारण-संबंधिनी ये सब भूलें होती हैं।

मातृ-भाषा मे बातचीत करते समय बीच बीच में अँगरेजी-शब्दों को मिलाकर एक प्रकार की खिचड़ी-भाषा के बोलने की जो दूषित प्रथा है उसका तो सर्वथा त्याग ही किया जाना चाहिए। भारतवर्ष में इस 'खिचड़ी-संभाषण-प्रथा' का तो इतना प्रचार है कि कदाचित् ही कोई प्रांत इसके आधिपत्य से बचा हो।

इसी प्रकार मातृ-भाषा में ऐसे प्रांतीय शब्द भी न लाए जाएँ जो या तो बिलकुल भदेश हों या दूसरे प्रांतवाले जिन्हें समझ न सकें। बिना किसी कारण के अपनी मातृ-भाषा को छोड़ अन्य भाषा मे बातचीत करना शिष्टता के विरुद्ध है।

"हिंदुस्तानी शिष्टाचार से"— —कामताप्रसाद गुरु

पाठ-सहायक

संभाषण—सम् + भाषण—बोलना, **सभ्यता**—(सभ्य—सभा के योग्य + ता) सभ्य लोगों का गुण, **श्रोता**—सुननेवाला, **घनिष्ठ**—(घन—निबिड़—घन + इष्ट) बहुत घना, तुलनार्थ में इष्ट प्रत्यय है, इसी प्रकार गरिष्ठ आदि शब्द देखो। **उपालंभ**—उलाहना, **अश्लीलता**—अशिष्टता, **उपहास्यजनक**—हँसी उत्पन्न करनेवाला, इसी प्रकार लज्जाजनक आदि शब्द बनाओ।

अभ्यास

१—बातचीत के जो नियम यहाँ दिए गए हैं उन्हे चुनकर संक्षेप से लिखो।

२—बातचीत करते समय कब, कहाँ कैसी भाषा का प्रयोग करना चाहिए ? और भाषा को किन दोषों से बचाना चाहिए ?

३—'खिचड़ी-भाषा' से क्या तात्पर्य है, उदाहरण देकर समझाओ।

४—बातचीत की महत्ता पर एक ४ पृष्ठ का लेख लिखो।

५—इसी पाठ के आधार पर एक पत्र अपने छोटे भाई को लिखो और उसे बातचीत करने का ढंग बताओ।

६—बातचीत के विषय में तुम्हें जो कहावतें या कवियों की कविताएँ याद हों भावार्थ के साथ लिखो।

७—बातचीत में कहावतों एवं मुहावरों का प्रयोग क्यों करना अच्छा है ?

८—विशेषण या संज्ञाएँ बनाकर प्रयुक्त करो—

बात (बातूनी), रुकना, बकबक, अधिकार।

९—अंतिम अनुच्छेद का वाक्य-विच्छेद करो और पद-व्याख्या करो—

ऐसे, प्रांतीय, जो, जिन्हें, अपनी, करना।

संकेत—

बातचीत के अन्य नियम जो उपयोगी हैं और इसमें नहीं दिए जा सके, बताने चाहिएँ।

——

(१६) लक्ष्य*

युवा पुरुषों को चाहिए कि संसार-क्षेत्र में प्रवेश करने के पहले वे अपने चित्त मे सोचें कि हमारे जीवन का लक्ष्य क्या है ? हम क्या हुआ चाहते हैं और उसके लिये हमारे पास क्या क्या सामग्रियाँ इकट्ठी हैं ? तथा जिस संसार-क्षेत्र मे जीवन-युद्ध के लिये हम आगे बढ़ते हैं उसके लिये हम कहाँ तक सुसज्जित हैं।

सैनिको की यह रीति है कि युद्ध मे जाने के पहले वे युद्ध करने के नियमो को भली भाँति सीख लेते हैं, और ज्यों ज्यों युद्ध करते जाते हैं त्यों ही त्यों उनके साहस, तेज और निपुणता की वृद्धि होती जाती है। अंत मे वे युद्ध-विद्या में ऐसे निपुण हो जाते हैं कि फिर उन्हें शत्रुओं से हारने की विशेष संभावना नहीं रहती। संसार-क्षेत्र मे जीवन-युद्ध के लिये जो विद्यार्थी-रूपी सैन्यदल को पाठशालाओं, विद्यालयों और विश्वविद्यालयों मे शिक्षाएँ दी जाती हैं, उनकी अवस्था भी ठीक इसी प्रकार की है, इसलिये संसार मे प्रवेश करने के पहले सभों को अपने बल, साहस और योग्यता की परीक्षा कर लेनी चाहिए।

---

* स्पेक्टेटर के आशय पर।

इस प्रकार सभी को अपनी परीक्षा करके अपने जीवन के लक्ष्य को स्थिर कर लेना उचित है। ध्यान रहे कि जिस विषय को तुम लक्ष्य करो वह ऊँचा तथा बड़ा हो; क्योंकि जिसके जीवन का लक्ष्य सच्चा और ऊँचा नहीं है, वह कदापि सच्चरित्र और उन्नत नहीं हो सकता। फिर लक्ष्य के स्थिर हो जाने पर उसकी ओर आगे बढ़ने के लिये बराबर यत्न करना चाहिए और जब तक वह लक्ष्य प्राप्त न हो जाय तब तक किसी कारण से भी पीछे न हटना चाहिए।

ऐसे मनुष्य के लिये जिसने संसार-क्षेत्र में प्रवेश नहीं किया है, अपने जीवन भर के लिये एक लक्ष्य को स्थिर कर लेना कुछ सहज-सी बात नहीं है, किंतु यह लक्ष्य इतने काम का है कि इसके बिना संसार-क्षेत्र मे प्रवेश करने पर मनुष्य पद पद पर चूकता और दुःख भोगता है। सैकड़ो मनुष्य अपने जीवन के लिये कोई भी लक्ष्य स्थिर न करके, जो उन्हे सामने दिखाई पड़ता है उसी को लेकर, संसार-क्षेत्र मे प्रवेश करते हैं। कुछ दिनों के पीछे जब उन्हे वह मार्ग अच्छा नहीं लगता तब झट उसे छोड़ कर किसी दूसरे पर चलने लगते हैं, थोड़े दिनो के पीछे उसे भी विकट पथ मान कर तीसरे पर चल निकलते हैं।

यों ही वे बार बार अपने जीवन के लक्ष्य को बदलते चले जाते हैं और लाभ के बदले हानि ही उठाते हैं। निदान इसी प्रकार की अदला-बदली मे उनके जीवन का सबसे अच्छा समय—युवावस्था—भी बीत जाता है। अंत में जब वे देखते

है कि इसी उलट-फेर में मेरी युवावस्था के बल, साहस और तेज सभी नष्ट हो गए, तब चट वे घबरा कर किसी एक पथ के पथिक बन जाते हैं और जहाँ तक बन पड़ता है यत्न करते हैं। किंतु कुछ ही दूर पहुँचते पहुँचते उन्हें बुढ़ापा आ घेरता है और वे किसी कार्य के करने में अशक्त हो जाते हैं।

इसी लिये बुद्धिमान लोग चंचल-चित्तवाले मनुष्यों के कामों की तुलना लड़कों के खेलों के साथ करते हैं। जैसे बालक नित्य नए नए खिलौनों को देखकर पुरानों की चाह नहीं करते, बार बार जीवन के लक्ष्य को बदलनेवाले मनुष्य भी ठीक उसी प्रकार करते हैं, और वस्तुओं के गुण-दोष पर विचार न कर उनकी बाहरी चमक-दमक ही पर मुग्ध हो लुभा जाते हैं। इसलिये पहले जीवन के किसी एक लक्ष्य को स्थिर किए बिना ही उस पथ में चलने से बड़े बड़े अनिष्टों की संभावना होती है, क्योंकि ऐसे मनुष्यों के जीवन का प्रारंभिक अमूल्य समय केवल व्यर्थ की चेष्टा में जाता है और उनका सारा शेष जीवन पश्चात्ताप ही करते बीतता है। देखो इस विषय में ज्ञानियों ने क्या कहा है—

"जो मनुष्य अपने कामों को भली भाँति से आरंभ करना जानते हैं, निश्चय है कि वे उसे उत्तम रीति से करने में भी समर्थ होंगे, क्योंकि भली भाँति से कार्य का आरंभ करना ही मानों उसे आधा समाप्त कर लेना है।"

बस, जीवन के पथ में जितना ही आगे बढ़ो उतनी ही इन

वाक्यों की सत्यता प्रमाणित होती है। कितने ही लोग विद्या, बुद्धि, साहस और बल के रहते भी सौभाग्य-लक्ष्मी की दृष्टि में नहीं आते, क्योंकि संसारी जीवन कैसे आरंभ करना होता है यह वे नहीं जानते। सच है 'प्रायः अच्छे कामों का आरंभ दुखदाई होता है' किसी काम को एक बार आरंभ करके और कुछ दिनों तक तन-मन से उसी में लगे रहने से मन आप ही उसी की ओर दौड़ने लगता है और ज्यों ज्यों उस कार्य की वृद्धि होती जाती है त्यों ही त्यों चित्त को भी आनंद प्राप्त होता जाता है।

किसी कार्य के आरंभ ही को देखकर उस काम के करनेवाले की बुद्धि की चमत्कारी और सहन-शीलता विदित हो जाती है। देखो जब हम लोग किसी हवेली को तोड़ना चाहते हैं तब जो मनुष्य उसकी पहली ईंट उखाड़ता है उसी को उस कार्य का प्रधान मनुष्य मानते हैं, क्योंकि पहली ईंट के उखाड़ने पर ही और ईंटों का उखाड़ लेना सहज हो जाता है। इसी प्रकार छोटे छोटे कामों से आरंभ करते करते बड़े बड़े काम भी हो जाते हैं, किंतु पहले ही यदि कोई मनुष्य सौभाग्य के सबसे ऊँचे शिखर पर चढ़ने का उद्योग करे तो निश्चय है कि वह मुँह के बल गिरेगा, और उसकी आशा कभी भी फलीभूत न होगी। बिना नीचे की सीढ़ियों पर चढ़े ऊपर की सीढ़ियों पर कोई भी नहीं चढ़ सकता। अतएव ऐसा कौन व्यक्ति है जो पहले छोटे छोटे कामों के बिना किए एकबारगी ही बड़े बड़े कामों के करने में समर्थ हो?

कार्य-मात्र ही उत्तम है, परंतु यदि उसका करनेवाला साधु और सुचरित हो तो कोई काम भी नीच या अपमान देनेवाला नहीं हो सकता। किंतु वह यदि असाधु वा कुचरित्र हो तो चाहे कैसे ही भले काम को क्यों न आरंभ करे, तुरंत ही उस काम को कलंकित करके आप भी अपमानित और लज्जित हो जाता है। यही कारण है कि सामान्य कामों से भी बड़ों की बड़ाई और बड़े कामों से भी नीचों की नीचता प्रकट हो जाती है, क्योंकि निज चरित्र से ही मनुष्य अपने किए हुए कामों को बनाता, वा बिगाड़ता है।

पृथ्वी में सभी लोग बड़े हुआ चाहते हैं, किंतु वैसे बड़े कर्म कोई बिरले ही करते हैं। बस इसी से वे सब उन्नत नहीं हो सकते। अतएव, भाई! यदि तुम उन्नत हुआ चाहते हो तो संसार-क्षेत्र के द्वार पर खड़े होकर विचारो कि तुम्हारा चित्त किस ओर झुकता है। बस, उसी के अनुसार अपना एक लक्ष्य स्थिर करके लगातार काम करते रहो। विश्वास, धैर्य और अपनी सारी शक्ति से उस काम के करने का यत्न करो फिर तो तुम्हें आप ही उस कार्य की उन्नति को देखकर अनन्द होगा, तुम सुखी होगे और फिर उस काम को बिना किए कदापि चुपचाप न बैठ सकोगे।

बहुतेरे लोग तुम्हें बहकावेंगे कि तुम इस कार्य के योग्य नहीं हो, किंतु तुम उनके कहने पर कान न देकर अपने सिद्धांत के अनुसार चले चलो और बराबर इस बात को स्मरण रक्खो कि

चाहे कोई भी कैसा ही कठिन काम क्यों न हो, परिश्रम के साथ लगातार करने से एक न एक दिन वह सिद्ध हो ही जाता है। यदि कोई काम कठिन या दुखदाई हो तो भी अपनी कर्तव्यता और उसकी आवश्यकता पर ध्यान देकर तुम उसे ऐसे आदर और धैर्य से करो कि जिससे तुम्हे पूरा पूरा सुख मिले। अपने करने के योग्य कार्य यदि दुखदाई भी हो तो भी तुम उसे सुखदाई मानकर कर ही डालो। हाँ इस विषय में तुम पूरे ही सावधान रहो कि अपनी उन्नति देखकर आप ही अपने हृदय मे अभिमान से न फूल जाओ वरन् सदैव नम्र और स्थिरचित्त रह कर अपने कामो को करो। इस विषय में किसी विद्वान् का उपदेश है कि—

"अपने स्वभाव को नम्र और उद्देश्य को उच्चतम करो, क्योंकि ऐसा करने से तुम नम्र और उन्नत-हृदय होगे। देखो कदापि निराश न हो, क्योंकि जो मनुष्य आकाश को लक्ष्य करके ऊपर को तीर छोड़ता है उसका तीर वृक्ष के अग्र भाग को लक्ष्य बनानेवाले व्यक्ति के तीर से अधिक ही ऊँचा जाता है।"

सच है, जो मनुष्य उन्नति के उच्च शिखर पर चढ़ने के लिये तन-मन से यत्न करते हैं, चाहे पूरी रीति से उनकी आशा सफल न हो, तो भी औरो की अपेक्षा वे अवश्य आगे बढ़ जाते हैं, क्योंकि जिन्होंने अपने चरित्र को निर्मल और नम्र बनाया है उनकी उन्नति अवश्य ही होनेवाली है। जिनकी आशा ऊँची है क्या वे कदापि नीचता के वश में आ सकते

हैं ? उनके चरित्र, उनकी आशाएँ और उनके कार्य सभी अच्छे और बड़े होते हैं और ऐसे ही मनुष्यों के आगे उन्नति सदा हाथ जोड़े खड़ी रहता है।

—कातिकप्रसाद

पाठ-सहायक

लक्ष्य—निशाना, उद्देश्य, अदलाबदली—परिवर्तन, देखो कैसा शब्दयुग्म है, इसी प्रकार के अन्य युग्म सोचो, अनिष्ट—(अन्—नहीं + इष्ट—पसंद) अनीप्सित।

अभ्यास

१—इस पाठ की भाषा कैसी है ?

२—इस पाठ से जोड़ेवाले शब्द चुनो और उनके समभाववाले अन्य शब्दयुग्म या शब्द लिखो।

३—अपने वाक्यों में प्रयुक्त करके भावार्थ स्पष्ट करो—

उन्नति सदा हाथ जोड़े खड़ी रहती है।
सौभाग्य-लक्ष्मी की दृष्टि में नहीं आते।
बाहिरी चमक-दमक पर मुग्ध हो लुभा जाते हैं।
जीवन-युद्ध के लिये आगे बढ़ते हैं।

४—इसका शीर्षक क्या हो सकता है, लेख का सार-तत्त्व क्या है ?

५—इस पाठ का सारांश दो पृष्ठों में स्पष्टरूप से लिखो।

६—विद्यार्थियों की तुलना किनसे किस प्रकार की गई है ?

७—जीवन के लक्ष्य से क्या तात्पर्य है ? उसकी जीवन में कैसी आवश्यकता है ?

८—विशेषण एवं संज्ञाएँ बनाकर प्रयुक्त करो—

प्रवेश, तेज, शत्रु, परीक्षा, जीवन, घबराना।

९—प्रथम अनुच्छेद की व्याख्या और वाक्यविग्रह करो।

(२०) जापान की शिक्षा-प्रणाली

कोई सातवीं शताब्दी ईसवी तक जापान में शिक्षा का कोई प्रबंध न था। सातवों और आठवीं शताब्दियों में इस देश में चीन देश की सभ्यता फैली, तब से शिक्षा का भी कुछ प्रचार हुआ। सन् ७०१ ई० के एक आज्ञा-पत्र के अनुसार राजधानी मे एक विश्वविद्यालय स्थापित हुआ, जिसमे पुराने साहित्य, दर्शन इतिहास, क़ानून, संगीत, गणित आदि के पढ़ाने का प्रबंध किया गया। क़ानून के अतिरिक्त शेष सब विषय चीन देश ही के लिए गए। हर एक सूबे मे भी एक एक स्कूल खोला गया। इन स्कूलो या विश्वविद्यालय में ऊँचे पदाधिकारियों के ही लड़के भरती किए जाते थे।

शिक्षा का यह क्रम बहुत दिनों तक जारी न रह सका क्योंकि देश मे सैनिक अधिकार बढ़ गया और जागीरदारी की प्रणाली चल पड़ी। सैकड़ों वर्ष तक यह अवस्था रही कि शिक्षा देने के स्थान बौद्ध-मठ ही रह गए। बड़े बड़े सैनिक अफ़सरों के लड़कों को भी शिक्षा दी जाती थी तो इन्हीं बौद्ध-मठों मे। फ़ौजी राज्य के सबसे बड़े अफ़सर को 'शोगुन' कहते थे। यथार्थ में 'शोगुन' को ही देश का पूरा अधिकार था। उसके नीचे और फ़ौजी अफ़सर होते थे, जो अपनी

अपनी जागीरों के कर्ता, धर्ता और विधाता सभी थे। कोई सात सौ वर्ष तक देश मे फ़ौजी अफ़सरो का ही अधिकार रहा।

१७ वीं शताब्दी के अंतिम भाग मे 'टोकूगवा' घराने के शोगुनों ने देश में शांति स्थापित की, तब फिर शिक्षा का प्रबंध किया गया। परंतु अब भी फ़ौजी अफ़सरो के ही लड़कों के लिये शिक्षा का द्वार खुला था। कोई सौ वर्ष पश्चात् साधारण जनता के लिये स्कूल खुले परंतु तब भी उच्च शिक्षा के अधिकारी सैनिक लोग ही रहे और किसान, कारीगर तथा व्यापारी लोग अधिकतर अशिक्षित ही रहते थे। यदि पढ़ते भी थे तो थोड़ा लिखना, पढ़ना और गणित ही सीख पाते थे। अस्तु सुशिक्षित लोगों की संख्या बहुत कम थी।

सैनिक लोग चीनी भाषा पढ़ते और युद्ध-कला सीखते थे। ऐसी शिक्षा हर एक जागीरदार के ऐसे स्कूल मे मिलती थी, जो उसके नौकरों-चाकरो के लड़कों के लिये खोला जाता था। जो सैनिक लोग विद्या में अधिक उन्नति करते थे या आगे पढ़ना चाहते थे वे देश के भिन्न भिन्न भागों के विख्यात अध्यापकों की सेवा में जाते थे। शोगुन की राजधानी येडो में, जिसे अब टोकियो कहते हैं, एक पाठशाला थी जहाँ नामी नामी अध्यापक चीनी भाषा मे व्याख्यान देते थे।

इसके अतिरिक्त कई प्रसिद्ध अध्यापकों ने अपनी निज की पाठशालाएँ खोल रक्खी थीं जिनमें उनके नाम से आकर्षित

होकर देश के भिन्न भिन्न भागों के लोग पढ़ने के लिये जाते थे। इनमे कुछ कुछ प्रचार अन्य विषयों का भी था जैसे जापानी साहित्य, गणित, वैद्यक आदि और कुछ दिनों मे डच-भाषा के द्वारा पाश्चात्य विद्या की भी चर्चा होने लगी थी। यह कहना बिलकुल सत्य नहीं है कि पचास ही वर्ष से जापानी लोग पाश्चात्य विद्याएँ सीखने लगे हैं। इससे पहले भी डच लोग अपनी भाषा की जो पुस्तके जापान देश मे ले जाते थे उन्हे जापानी लोग बड़े चाव तथा परिश्रम से पढ़ते थे और कभी कभी उनका अनुवाद भी जापानी भाषा या चीनी भाषा मे करते थे।

सन् १८६८ ई० मे जापान देश मे नई जागृति हुई। शोगुन ने अपना अधिकार सम्राट् को दे दिया। इस घटना की यादगार मे नया सवत्सर स्थापित किया गया, और देश में हर ओर उन्नति होने लगी। सन् १८७१ ई० मे जागीर-दारी की प्रणाली तोड़ दी गई। फौजी शासन उड़ा दिया गया। सब प्रकार के लोग क़ानून की दृष्टि मे बराबर कर दिए गए। सन् १८७२ ई० मे एक राजाज्ञा निकली जिसके अनु-सार शिक्षा के लिये सबका अधिकार बराबर माना गया और शिक्षा अनिवार्य्य कर दी गई।

इस राजाज्ञा की भूमिका मे लिखा था कि "अब से इरादा है कि बिना जाति-पाँति और स्त्री-पुरुष के भेद के शिक्षा का प्रचार किया जाय, किसी भी गाँव में कोई भी ऐसा घर न हो

जिसमे विद्या न हो, और किसी भी घर में कोई भी ऐसा ज
न हो जो बेपढ़ा हो। बाप और बड़े भाई को इस बात
सूचना दी जाती है कि वे अपने बच्चों और भाइयों को
के साथ भेजें और विद्या पढ़ने दें। रही उच्च शिक्षा की बा
सो व्यक्तिगत योग्यता पर अवलंबित है। अगर कोई बाप
बड़ा भाई अपने बच्चों या भाई-बहनों को पढ़ाने के लिये क
से कम प्रारंभिक स्कूल में भर्ती न कराएगा तो वह अप
कर्तव्य से बहिर्मुख माना जायगा।"

सन् १८६८ ई० के नए प्रबंध में प्रारंभ से ही शिक्ष
प्रचार को प्रोत्साहन दिया गया। विदेशीय भाषाओं के लि
जो स्कूल अभी तक था वह बढ़ाया गया, यहाँ तक कि को
दस वर्ष मे वह टोकियो का विश्वविद्यालय बन गया। बहुत
से नए स्कूल खोले गए। विद्यार्थी बाहर के देशों को शिक्षा
लिये भेजे गए, अन्य देशों से बुलाकर अध्यापक रक्खे गए
नार्मल स्कूल के लिये एक अध्यापक अमरीका से आया। उस
अपने देश की प्रणाली पर पाठ्य पुस्तकें और नक़शे आदि
बनवाए और एक साल के भीतर ही पाश्चात्य प्रणाली पर
शिक्षा का विधान कर दिया गया।

शिक्षा-संबंधी क़ानून इतना बहुव्यापी कर दिया गया कि
उस समय उसकी ठीक ठीक पाबंदी न हो सकी। और चूँकि
वह पाश्चात्य देशों की प्रणाली के अनुसार बनाया गया था
इसलिये उसकी बहुत-सी बातें जापान के लिये सुभीते की भी

न सिद्ध हुई। इसका परिणाम यह हुआ कि तब से अब तक (४८ वर्ष के अंदर) उस क़ानून की बहुत-सी बातें बदली जा चुकी हैं; परंतु उसका सबसे बड़ा यह सिद्धांत अभी तक ज्यों का त्यों चला जाता है कि जाति-भेद या लिंग-भेद को त्याग कर हर एक व्यक्ति को कम से कम प्रारंभिक शिक्षा अनिवार्य्य रूप से ग्रहण करनी पड़ेगी और हर एक व्यक्ति को उच्च शिक्षा ग्रहण करने के लिये बराबर ही मौक़ा दिया जायगा।

अब राज्य की ओर से शिक्षा-विभाग पर बड़ा ज़ोर दिया जाता है। शिक्षा के लिये एक विशेष मंत्री है जो राज्य की महासभा का सदस्य है और जिसके अधीन शिक्षा-संबंधी एक कौंसिल है जिसके सदस्य ये लोग होते हैं—राजकीय विश्वविद्यालयों के सभापति, भिन्न भिन्न कालेजों और स्कूलों के प्रधान, कृषि-विभाग, व्यापार-विभाग, स्थल-सेना-विभाग, जल-सेना-विभाग आदि के प्रतिनिधि, अन्य लोग जो अपने शिक्षा-संबंधी ज्ञान के लिये विख्यात हैं। जब कोई नई बात स्वीकृत करानी होती है तब शिक्षा-मंत्री अपना प्रस्ताव कौंसिल के सामने उपस्थित करता है। वहाँ से स्वीकृत होकर वह बात राजकीय महासभा में उपस्थित की जाती है। तब सम्राट् के उस पर हस्ताक्षर होते हैं और वही बात राजाज्ञा के रूप में प्रकाशित कर दी जाती है। सब प्रकार की शिक्षाओं के लिये सम्राट् की ओर से ही आज्ञाएँ निकलती हैं।

शिक्षा का क्रम यह है कि सबसे नीचे प्रारंभिक शिक्षा है। इससे भी नीचे किंडरगार्टन शिक्षा होती है, परंतु किंडरगार्टन को राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली का अंग नहीं मानते। प्रारंभिक शिक्षा के दो विभाग हैं। साधारण प्रारंभिक और उच्च प्रारंभिक। साधारण प्रारंभिक शिक्षा की पढ़ाई ६ वर्ष में पूरी हो जाती है और बच्चे की उम्र का छठा वर्ष पूर्ण हो जाने के साथ ही वही अनिवार्य्य हो जाता है। साधारण प्रारंभिक शिक्षा के पश्चात् बच्चा उच्च प्रारंभिक शिक्षा में प्रवेश कर सकता है, जिसकी पढ़ाई दो या तीन वर्ष में पूर्ण होती है। चूँकि साधारण प्रारंभिक शिक्षा की समाप्ति पर शिक्षा की अनिवार्यता जाती रहती है इसलिये कुछ स्कूल पूरक शिक्षा के लिये खोले गए हैं जिनमें वे बच्चे भरती किए जाते हैं जो उच्च शिक्षा नहीं प्राप्त करना चाहते।

प्रारंभिक शिक्षा मे और विशेषतः साधारण विभाग में लड़कों और लड़कियों को एक ही साथ, एक ही दर्जे में, एक ही पाठ, एक ही रीति से, पढ़ाया जाता है। इसके उपरांत लड़कों और लड़कियों के स्कूल और पाठ्य-विषय अलग अलग हो जाते हैं। जो लड़के उच्च शिक्षा प्राप्त करना चाहते हैं वे साधारण प्रारंभिक शिक्षा की पूर्ति हो जाने पर मिडिल स्कूल मे भरती होते हैं उन्हें उच्च प्रारंभिक शिक्षा की आवश्यकता नहीं होती। मिडिल स्कूल का कोर्स (पाठ्य-क्रम) पाँच वर्ष का है और यदि वहाँ से कोई शिक्षा समाप्त

करना चाहे तो एक वर्ष में पूरक कोर्स पढ़ सकता है। मिडिल स्कूल से निकल कर हायर स्कूल* में जाना पड़ता है, जहाँ तीन वर्ष की शिक्षा होती है। इसके बाद राजकीय कालेज आते हैं जहाँ तीन या चार वर्ष की पढ़ाई होती है। इस सबके बाद पोस्ट ग्रेजुएट अर्थात् अत्यंत उच्च शिक्षा का प्रबंध है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कालेज-शिक्षा कम से कम २४ या २५ वर्ष की अवस्था में समाप्त होती है, यदि बीच में कोई विघ्न न पड़े। हमारे देश में कम से कम २० वर्ष की उम्र में बी० ए० की डिग्री (उपाधि) मिल सकती है। इस पर भी जापान में शिक्षा का इतना चाव है कि स्कूलों और कालेजों की संख्या के खूब बढ़ाने पर भी भरती के लिये प्रवेशिका परीक्षा होती है। भरती के लिये जितनी जगहें रिक्त होती हैं उनसे दोगुने तीनगुने तक परीक्षार्थी पहुँच जाते हैं।

मिडिल स्कूल छोड़ने के पश्चात् यदि कोई उच्च शिक्षा की ओर न जाना चाहे तो व्यापारिक कालेज में भरती हो सकता है या बड़े नार्मल स्कूल में भरती होकर अध्यापक का काम सीख सकता है या जल-सेना या स्थल-सेना के स्कूलों में भरती हो सकता है, अथवा व्यापारिक जहाजों

---

* अँगरेजी—हाई—ऊँचा, हायर—उच्चतर।

स्कूल में भर्ती हो सकता है। उच्च प्रारंभिक शिक्षा पा चुकने या मिडिल स्कूल में दो वर्ष तक रहने के बाद ऐसे व्यापारिक स्कूल में प्रवेश हो सकता है, जहा पर कला-कौशल, खेती, सौदागरी जहाज चलाने आदि की विद्या की शिक्षा दी जाती है ऐसे स्कूल में तीन वर्ष रहना पड़ता है। साधारण प्रारंभिक शिक्षा के बाद लड़के छोटे दर्जे के व्यापारिक स्कूलों में जा सकते हैं।

इस प्रकार शिक्षा का क्रम ऐसा रक्खा गया है कि साधारण प्रारंभिक या उच्च प्रारंभिक शिक्षा अथवा मिडिल स्कूल की शिक्षा के उपरांत व्यापारिक शिक्षा के स्कूल या कालेज में अपनी योग्यता के अनुसार विद्यार्थी प्रवेश कर सकते हैं।

लड़कियों की शिक्षा प्रायः लड़कों की शिक्षा के समान ही होती है। साधारण प्रारंभिक शिक्षा के अनंतर लड़कियाँ उच्च प्रारंभिक शिक्षा में जा सकती हैं या लड़कियों के हाई स्कूल में भरती हो सकती हैं। इसका कोर्स चार या पाँच वर्ष का होता है। दो वर्ष का पूरक कोर्स भी इसमें जोड़ दिया जा सकता है। जो लड़कियाँ अध्यापिकाएँ बनना चाहती हैं उनके लिये नार्मल स्कूल भी हैं। राज्य की ओर से तो लड़कियों की इससे ऊँची शिक्षा के लिये प्रबंध नहीं है, परंतु कई लोगों ने लड़कियों की उच्च शिक्षा के लिये निजी कालेज भी खोले हैं। इनके अतिरिक्त लड़कियों के भी कई प्रकार के व्यापारिक स्कूल खुले हुए हैं।

इस प्रकार जापान में कई श्रेणियों के स्कूल और कालेज

पाए जाते हैं (१) प्रारंभिक स्कूल, जिनमे किंडरगार्टन भी शामिल है। इसी श्रेणी के कुछ स्कूल ऐसे भी हैं जिनमें व्यापारिक शिक्षा का प्रबंध है, (२) माध्यमिक स्कूल, जिनमे मिडिल स्कूल, लड़कियों के हाई स्कूल, व्यापारिक स्कूल, नार्मल स्कूल आदि शामिल हैं, (३) इनके ऊपर क़ानून, वैद्यक, विज्ञान, साहित्य, कला-कौशल आदि के मुख्य मुख्य कालेज हैं और व्यापार, कारीगरी, इंजीनियरी, खेती, जंगल आदि के ख़ास कालेज हैं। इसी श्रेणी मे ऊँचे नार्मल स्कूल और हायर स्कूल भी सम्मिलित हैं, (४) राजकीय विश्वविद्यालय जिनमे क़ानून, वैद्यक, विज्ञान, साहित्य, इंजीनियरी और खेती के कालेज हैं।

—चंद्रमौलि शुक्ल

पाठ-सहायक

अनिवार्य्य—जिसका निवारण न हो सके, व्यक्ति-गत—अपनी, बहिर्मुख (बहिः—बाहर + मुख)—विमुख। इसी प्रकार अन्तर्मुख आदि शब्द बनाओ, सदस्य—मेंबर।

अभ्यास

१—जापान में प्रथम कैसी शिक्षा-प्रणाली थी?

२—जापान की शिक्षा-प्रणाली मे कब कब कैसे कैसे रूपांतर या परिवर्तन हुए?

३—आधुनिक समय में वहाँ कैसी शिक्षा-प्रणाली है, उसके किसी विशेष दोष पर टीका-टिप्पणी करो।

४—स्त्री-शिक्षा की जापान में क्या दशा है?

५—अपने देश की शिक्षा प्रणाली पर एक ऐसा ही निबंध लिखो।

६—जापान में किस प्रकार की शिक्षा की विशेष प्रधानता जान पड़ती है और उसका क्या फल है?

७—कैसे शब्द हैं, व्याख्या करो और नियम लिखो—

राजकीय, माध्यमिक, सैनिक, जापानी, अनिवार्य, पाश्चात्य, अध्यापिका।

८—वाक्य परिवर्तन करो—

जा सकती है, दिया जा सकता है, खोले हैं, खुले हैं।

९—अंतर बताओ और उदाहरण देकर समझाओ—

एक एक, एकाएक, एक से एक, एक में एक, एक को एक, एक पर एक, कुछ कुछ, कुछ से कुछ, कुछ में कुछ, कुछ का कुछ।

१०—भिन्न भिन्न अर्थों में प्रयुक्त करो—

नामी, चीनी, आदि, हर, उपाधि।

११—अपने यहाँ की प्रारंभिक शिक्षा के हानि-लाभ पर अपने विचार प्रकट करो।

संकेत—

१—इसी प्रकार अन्य देशों, जैसे इँगलैंड, फ्रांस, जर्मनी, अमेरिका आदि की शिक्षा-प्रणाली पर प्रकाश डालना।

२—अपने यहाँ की शिक्षा-प्रणाली की विवेचना कर समझाना।

---

(२१) नीति-निचय

१—रहीम-रचना

नित 'रहीम' चित आपनो, कीजै चतुर चकोर।
निसि-बासर लागो रहै, कृष्णचंद की ओर ॥१॥

प्रीति-रीति सब सों भली, वैर न हित-मित-गोत।
'रहिमन' याही जनम की, बहुरि न संगति होत ॥२॥

दुरदिन परे 'रहीम' कह, भूतल सब पहिचानि।
सोच नहीं वित-हानि को, जो न होय हित-हानि ॥३॥

'रहिमन' देखि बड़ेन को, लघु न दीजिए डारि।
जहाँ काम आवै सुई, कहा करै तरवारि ॥४॥

'रहिमन' अती न कीजिए, गहि रहिए निज कानि।
सहिजन अति फूलै तऊ, डार-पात की हानि ॥५॥

समय-दसा-कुल देखि कै, लोग करत सनमान।
'रहिमन' दीन अनाथ को, तुम बिन को भगवान ॥६॥

दीन सबन को लखत हैं, दीनहिं लखै न कोय।
जो 'रहीम' दीनहिं लखै, दीनबंधु-सम होय ॥७॥

कहु 'रहीम' कैसे निभै, बेर-केर को संग।
वै डोलत रस आपने, उनके फाटत अंग ॥८॥

जो 'रहीम' ओछो बढ़ै, तो अति ही इतराय।
प्यादे सों फ़रज़ी भयो, टेढ़ो टेढ़ो जाय ॥९॥

खीरा को मुँह काटि कै, मलियत लोन लगाय।
'रहिमन' करुए-मुखन कों, चहियत यही सजाय ॥१०॥

जे ग़रीब सों हित करैं, धनि 'रहीम' वे लोग।
कहा सुदामा बापुरो, कृष्ण-मिताई - जोग ॥११॥

जो 'रहीम' उत्तम प्रकृति, का करि सकत कुसंग।
चंदन विष व्यापत नहीं, लपटे रहत भुजंग ॥१२॥

आप न काहू काम के, डार - पात - फल - मूर।
औरन को रोकत फिरैं, 'रहिमन' कूर बबूर ॥१३॥

'रहिमन' सूधो चाल सों, प्यादा होत वज़ीर।
फ़रज़ी मीर न ह्वै सकै, टेढ़े की तासीर ॥१४॥

यह 'रहीम' निज संग लै, जनमत जगत न कोय।
बैर, प्रीति, अभ्यास, जस, होत होत ही होय ॥१५॥

जेहि 'रहीम' तन-मन दियो, कियो हिये बिच भौन।
तासों दुख-सुख कहन की, रही बात अब कौन ॥१६॥

'रहिमन' नीचन-संग बसि, लगत कलंक न काहि।
दूध कलारिन हाथ लखि, मद समुझहिं सब ताहि ॥१७॥

बिगरी बात बनै नहीं, लाख करौ किन कोय।
'रहिमन' बिगरे दूध को, मथे न माखन होय ॥१८॥

मथत मथत माखन रहै, दही-मही बिलगाय।
'रहिमन' सोई मीत है, भीरि परे ठहराय ॥१९॥

'रहिमन' निजमन की व्यथा, मन ही राखौ गोय।
सुनि अठिलैहैं लोग सब, बाँटि न लैहैं कोय ॥२०॥

'रहिमन' चुप ह्वै बैठिए, देखि दिनन को फेर।
जब नीके दिन आयहैं, बनति न लगिहै बेर ॥२१॥

जाल परे जल जात बहि, तजि मीनन को मोह।
'रहिमन' मछरी नीर को, तऊ न छाँड़ति छोह ॥२२॥

'रहिमन' पानी राखिए, बिन पानी सब सून।
पानी गए न ऊबरे, मोती-मानुस-चून ॥२३॥

यों 'रहीम' सुख होत है, उपकारी के संग।
बाँटनवारे के लगै, ज्यौं मेहँदी को रंग ॥२४॥

(रहिमनविनोद से) —रहीम

पाठ-सहायक

गोत—गोत्र, कूबरो—कुब्ज, टेढ़ा, ओछो—नीच, इतराय—घमंड करना, बापुरो—बेचारा, दीन।

अभ्यास

१—शुद्ध संस्कृत-शब्द बताओ—

दुरदिन, क्रूर, चून, थिर, बबूर, गोत, मानुस।

२—खड़ी बोली में रूपांतरित कर व्याकरण-व्याख्या करो।

पीजै, याही, बहुरि, रोव, जे, भयो, को, दीनहि, लखै, कहु, लगाय, कहा।

३—रूपांतरित कर अपनी हिंदी मे शुद्ध प्रयोग करो—

होत होत ही होय, बनै नहीं, रही बात, कितो करौ, लाख करौ, दिनन को फेर, पानी राखिए।

४—बताओ इनमें क्या विशेषता है—

मथत मथत, होत होत, टेढो टेढो।

५—रहीम के विषय मे तुम क्या जानते हो सक्षेप में लिखो।

६—कौन दोहे ऐसे हैं जिनका प्रयोग कहावतो के समान होता है, उनमें सबसे उत्तम दोहे की व्याख्या करो।

७—रहीम ने किस भाषा का प्रयोग इन दोहों मे किया है ?

८—रहीम की इस रचना को पढकर रहीम की कविता पर अपनी राय दो।

९—दोहे में जो अतःकथाएँ आई हैं उन्हें सक्षेप में लिखो।

संकेत—

१—रहीम की जीवनी तथा कविता का पूरा परिचय देना।

२—किसी अन्य नीति-लेखक से रहीम की तुलना करना-कराना।

—

२—गिरिधर-गिरा

जाकी धन-धरती हरी, ताहि न लीजै संग।
जो सँग राखेही बनै, तौ करि राखु अपंग॥
तौ करि राखु अपग, भूलि परतीति न कीजै।
सौ सौगंधे खाय, चित्त मे एक न दीजै॥
कह 'गिरिधर' कविराय, खुटक जैहै नहिं ताकी।
कोटि दिलासा देय, हरी धन-धरती जाकी॥ १॥

दौलत पाय न कीजिए, सपने मे अभिमान।
चंचल जल दिन चार को, ठाँउ न रहत निदान॥
ठाँउ न रहत निदान, जियत जग मे जस लीजै।
मीठे वचन सुनाय, बिनय सबही की कीजै॥
कह 'गिरिधर' कबिराय, अरे! यह सब घट तौलत।
पाहुन निसदिन चारि, रहत सब ही के दौलत॥ २॥

गुन के गाहक सहस नर, बिनु गुन लहै न कोय।
जैसे कागा-कोकिला, सब्द सुनै सब कोय॥
सब्द सुनै सब कोय, कोकिला सबै सुहावन।
दोऊ को एक रंग, काग सब भए अपावन॥
कह 'गिरिधर' कबिराय, सुनो हो ठाकुर मन के।
बिनु गुन लहै न कोय, सहस नर गाहक गुन के॥ ३॥

बिना बिचारे जो करै, सो पाछे पछिताय।
काम बिगारे आपनो, जग मे होत हँसाय॥

जग में होत हँसाय, चित्त में चैन न पावै।
खान, पान, सनमान, राग रँग मनहिं न भावै॥
कह 'गिरिधर' कविराय, दुःख कछु टरत न टारे।
खटकत है जिय माँहि, कियो जो बिना विचारे॥ ४॥

साईं अपने चित्त की, भूलि न कहिए कोय।
तब लगि मन में राखिए, जब लगि कारज होय॥
जब लगि कारज होय, भूलि कबहूँ नहिं कहिए।
दुरजन तातो होय, आप सियरे है रहिए॥
कह 'गिरिधर' कविराय, बात चतुरन के ताईं।
करतूती कहि देत, आप कहिए नहिं साईं॥ ५॥

साईं अपने भ्रात को, कबहुँ न दीजै त्रास।
पलक दूर नहिं कीजिए, सदा राखिए पास॥
सदा राखिए पास, त्रास कबहूँ नहिं दीजै।
त्रास दियो लंकेस, ताहि की गति सुनि लीजै॥
कह 'गिरिधर' कविराय, राम सों मिलियो जाई।
पाय बिभीषण राज, लंकपति बाज्यो साईं॥ ६॥

साईं समय न चूकिए, जथासक्ति उनमान।
को जानै को आय है, तेरी पौरि प्रमान॥
तेरी पौरि प्रमान, समय-असमय तकि आवै।
ताको तू मन खोलि, अंक भरि कंठ लगावै॥
कह 'गिरिधर' कविराय, सबै यामैं सधि जाई।
सीतल, जल-फल-फूल, समय जनि चूकौ साईं॥ ७॥

पानी बाढ़ो नाव में, घर में बाढ़ो दाम।
दोनों हाथ उलीचिए, यही सयानो काम॥
यही सयानो काम, राम को सुमिरन कीजै।
पर-स्वारथ के काज, सीस आगे धरि दीजै॥
कह 'गिरिधर' कविराय, बड़ेन की याही बानी।
चलिए चाल सुचाल, राखिए अपनो पानी॥८॥

(कविता-कौमुदी से) —गिरिधरदास

पाठ-सहायक

अपग—अगहीन, अशक्त, खुटक—खटका, पाहुन—मेहमान, ठाकुर—मालिक, राजा, तातो—कुपित, सियरे—शान्त, साई—समान, बाज्यो—कहलाया, उनमान—अनुसार।

अभ्यास

१—गिरिधर कविराय की क्या विशेषता है, उन्होंने किस प्रकार का काव्य लिखा है?

२—गिरिधर कविराय के विषय में तुम क्या जानते हो लिखो।

३—कुडलिया छद मे यहाँ तुम क्या विशेषताएँ देखते हो?

४—जो कुडलिया तुम्हें सबसे अधिक रुचती हो उसे गद्य मे रूपातरित करते हुए अपनी हिंदी मे अनुवादित करो।

५—साई शब्द से क्या तात्पर्य निकलता है; क्यों बहुत-सी कुडलियो मे इसका प्रयोग किया गया है?

६—व्याकरण-व्याख्या के साथ ही साथ खड़ी बोली में अग्रलिखित शब्दों को रूपातरित करो—

टाउँ, मिलियौ, बाज्यौ, पौरि, आइहै, बनै, जैहै, लहै, हॅमाय ।

७—पर्याय वाची शब्द बताते हुए शुद्ध रूप लिखो—

सुमिरन, कागज, मियरे, मधि, माई ।

८—कुण्डलिया नं० ७ का भावार्थ स्पष्ट रूप से लिखकर उसका वाक्य-विच्छेद करो ।

९—भिन्न भिन्न अर्थों में प्रयुक्त करो—

बाज्यौ, तातो, सियरे, दाम, पानी ।

१०—किन विशेष अर्थों में प्रयुक्त किए गए हैं—

तातो, दाम, ठाकुर, बाज्यौ ।

३—कबीर-वाणी

यह तन तो सब बन भया, कर्महिं भए कुल्हारि ।
आप आपको काटिहैं, कहै 'कबीर' बिचारि ॥१॥

करता था सो क्यों किया, अब करि क्यो पछिताय ।
बोया पेड़ बबूल का, आम कहाँ ते खाय ॥२॥

ऊँचे कुल का जनमिया, करनी ऊँच न होय ।
सुवरन-कलस सुरा-भरा, साधू निंदा सोय ॥३॥

ऐसी बानी बोलिए, मन का आपा खोय ।
अपना मन सीतल करै, औरन को सुख होय ॥४॥



महात्मा कबीरदास

जाको जेता निरमया, ताको तेता होय।
रत्ती घटै न तिल बढ़ै, जो सिर कूटै कोय ॥५॥

साईं से सब होत है, बंदे से कछु नाहिं।
राई ते परवत करै, परवत राई माहिं* ॥६॥

कमोदनी जलहर बसै, चंदा बसै अकास।
जो जाही की भावना, सो ताही के पास ॥७॥

झूठे सुख को सुख कहैं, मानत हैं मन मोद।
खलक[१] चबैना काल का, कछु मुख मे, कछु गोद ॥८॥

दोष पराये देखि करि, चला हसंत हसंत।
अपने चित्त न आवई, जिनको आदि न अंत ॥९॥

निंदक दूर न कीजिए, दीजै आदर-मान।
तन-मन सब निरमल करै, बकि बकि आनहिं आन ॥१०॥

'कबिरा' घास न निंदिए, जो पाँवों-तर होय।
उड़िकै परै जो आँखि में; खरा दुहेला होय ॥११॥

पपिहा पन को ना तजै, तजै तौ तन बेकाज।
तन छूटे तो कछु नहीं, पन छूटे है लाज ॥१२॥

---

* "धूलीलवः शैलताम्. मेरुः मृत्कणताम् " संस्कृत के श्लोक का भाव।

१—खल्क (फारसी) = दुनिया।

दाता के है धन घना, सिर सूरे के बोस।
पतिबरता के तन नहीं, पति राखै जगदोस ॥१३॥

'कबिरा' संगति साधु की, ज्यौं गंधो की बास।
जो कछु गंधी दे नहीं, तौ भी बास सुबास ॥१४॥

सुख के माथे सिल परै, नाम हृदय से जाय।
बलिहारी वा दुःख की, पल पल नाम उठाय ॥१५॥

माला फेरत जुग गया, गया न मन का फेर।
कर का मनका डार दे, मन का मनका फेर ॥१६॥

मूरख के समझावते, ज्ञान गाँठ को जाय।
कोयला होय न ऊजरा, सौ मन साबुन खाय ॥१७॥

गोधन, गजधन, बाजिधन, और रतन-धन-खान।
जो आवै संतोष-धन, सब धन धूरि-समान ॥१८॥

जग में बैरी कोइ नहीं, जो मन सीतल होय।
यह आपा तू डाल दे, दया करै सब कोय ॥१९॥

खोदखाद धरती सहै, काट-कूट बनराय।
कुटिल बचन साधू सहैं, और से सहा न जाय ॥२०॥

साँचे साप न लागई, साँचे काल न खाय।
साँचे को साँचा मिलै, साँचे माहिं समाय ॥२१॥

रूखा-सूखा खाय करि, ठंढा पानी पीव।
देखि पराई चूपड़ी, क्यों ललचावे जीव ॥२२॥

आगी आँ रूखी भली, सारा तो संताप।
जो चाहैगा चूपड़ी, बहुत करैगा पाप ॥२३॥
प्रेम-प्रीति से जो मिलै, तासों मिलिए धाय।
अंतर राखे जो मिलै, तासों मिलै बलाय ॥२४॥

पाठ-सहायक

जनमिया—जन्मा—यह संतों की भाषा का रूप है। आपा—अहभाव, गर्व [आपसे]। निरमया—बनाया, हसत हसत—हँसता हँसता, खरा—बड़ा, दुहेला—दुःख, बनराय—वनराज।

अभ्यास

१—कबीरदास ने कैसी भाषा का उपयोग किया है, उसकी कुछ विशेषताएँ दिखलाओ।

२—दोहे नं० १४, १७ और २२ को पूर्णरूप से स्पष्ट करो।

३—खड़ी बोली में रूपांतरित कर व्याकरण-व्याख्या करो।

जनमिया, निरमया, तेता, हसत, आन, परै।

४—किन दोहों को तुम नीति-विषयक समझते हो और क्यों?

५—दोहे नं० २, ४, ६ और ९ में जो मुख्य सिद्धांत दिए गए हैं उन पर प्रकाश डालो।

६—कबीर के सामाजिक और धार्मिक विचारों की जो झलक यहाँ तुम्हें मिलती है उनकी व्याख्या करो।

७—शुद्ध संस्कृत-रूप बताओ :—

रूखी, आन, पतिवरता, धरती, सुबरन।

८—छंद नं० १९, २२ और २४ को गद्य में लिखो।

९—"कबीर ने देहाती बोली का प्रयोग किया है" इसे सिद्ध करने के लिये तुम यहाँ क्या सामग्री पाते हो, सतर्क लिखो।

१०—भाववाचक संज्ञाएँ बनाओ—

सखा, सीतल, कुटिल, साधू, कलस।

११—अंतर बताओ और विविध प्रयोग लिखो—

फेर, फेर-फार, हेर-फेर।

संकेत—

१—कबीर का संक्षिप्त परिचय देकर उसके सिद्धांतों का विवेचन करना।

२—कबीर की कविता की आलोचनात्मक विशेषताएँ बताना।

---

(२२) मित्रता

जब कोई युवा पुरुष अपने घर से बाहर निकल कर बाहरी संसार मे अपनी स्थिति जमाता है, तब पहली कठिनता उसे मित्र के चुनने में पड़ती है। यदि उसकी स्थिति बिलकुल एकांत और निराली नहीं रहती तो उसकी जान-पहचान के लोग धड़ाधड़ बढ़ते ही जाते हैं और थोड़े ही दिनों मे कुछ लोगों से उसका हेल-मेल हो जाता है। यही हेल-मेल बढ़ते बढ़ते मित्रता के रूप मे परिणत हो जाता है। मित्रों के चुनाव की ही उपयुक्तता पर उसके जीवन की सफलता निर्भर हो जाती है; क्योंकि संगति का गुप्त प्रभाव हमारे आचरण पर बड़ा भारी पड़ता है।

हम लोग ऐसे समय में समाज में प्रवेश करके अपना कार्य आरंभ करते हैं जब कि हमारा चित्त कोमल और हर तरह का संस्कार ग्रहण करने के योग्य रहता है, हमारे भाव अपरिमार्जित और हमारी प्रवृत्ति अपरिपक्व रहती है। अपने मनोवेगों की शक्ति और अपनी प्रकृति की कोमलता का पता हमों को नहीं रहता। हम लोग कच्ची मिट्टी की मूर्त्ति के समान रहते हैं जिसे जो जिस रूप का चाहे, उसी रूप का कर दे—चाहे राक्षस बनावे, चाहे देवता।

ऐसे लोगों का साथ करना हमारे लिये बुरा है जो हमसे अधिक दृढ़ संकल्प के हैं; क्योंकि हमें उनकी हर एक बात बिना विरोध के ही मान लेनी पड़ती है। पर ऐसे लोगों का साथ करना और भी बुरा है जो हमारी ही बात को ऊपर रखते हैं; क्योंकि ऐसी दशा में न तो हमारे ऊपर कोई दबाव ही रहता है और न हमारे लिये कोई सहारा ही रहता है। दोनों अवस्थाओं में जिस बात का भय रहता है, उसका पता युवा पुरुषों को प्रायः बहुत कम रहता है। यदि विवेक से काम लिया जाय तो यह भय नहीं रहता; पर युवा पुरुष प्रायः विवेक से कम काम लेते हैं।

कैसे आश्चर्य की बात है कि लोग एक घोड़ा लेते हैं तो उसके गुण-दोषों को कितना परख कर लेते हैं, पर किसी को मित्र बनाने में उसके पूर्व आचरण और प्रकृति आदि का कुछ भी विचार और अनुसंधान नहीं करते। वे उसमें सब बात अच्छी ही अच्छी मान कर उस पर अपना पूरा विश्वास जमा देते हैं। हँसमुख चेहरा, बात-चीत का ढब, थोड़ी चतुराई वा साहस—ये ही दो-चार बातें किसी में देखकर लोग चटपट उसे अपना बना लेते हैं।

हम लोग यह नहीं सोचते कि मैत्री का उद्देश्य क्या है? तथा जीवन के व्यवहार में उसका कुछ मूल्य भी है? यह बात हमें नहीं सूझती कि यह एक ऐसा साधन है जिससे आत्म-शिक्षा का कार्य बहुत सुगम हो जाता है।

एक प्राचीन विद्वान् का वचन है—"विश्वासपात्र मित्र से बड़ी भारी रक्षा रहती है। जिसे ऐसा मित्र मिल जाय उसे समझना चाहिए कि खज़ाना मिल गया।" विश्वासपात्र मित्र जीवन की एक औषधि है। हमे अपने मित्रों से यह आशा रखनी चाहिए कि वे उत्तम संकल्पो में हमे दृढ़ करेंगे, दोष और त्रुटियो से हमें बचावेंगे, हमारे सत्य, पवित्रता और मर्यादा के प्रेम को पुष्ट करेंगे, जब हम कुमार्ग पर पैर रखेंगे, तब वे हमे सचेत करेंगे, जब हम हतोत्साह होंगे तब वे हमे उत्साहित करेंगे, सारांश यह है कि वे हमें उत्तमतापूर्वक जीवन-निर्वाह करने मे हर तरह से सहायता देंगे।

सच्ची मित्रता मे उत्तम से उत्तम वैद्य की-सी निपुणता और परख होती है। अच्छी से अच्छी माता का-सा धैर्य और कोमलता होती है। ऐसी ही मित्रता करने का प्रयत्न प्रत्येक युवा पुरुष को करना चाहिए।

छात्रावस्था मे तो मित्रता की धुन सवार रहती है। मित्रता हृदय से उमड़ा पड़ती है। पीछे के जो स्नेह-बंधन होते हैं उनमे न तो उतनी उमंग ही रहती है और न उतनी खिन्नता ही। बाल-मैत्री मे जो मग्न करनेवाला आनंद होता है, जो हृदय को वेधनेवाली ईर्ष्या और खिन्नता होती है, वह और कहाँ? कैसी मधुरता और कैसी अनुरक्ति होती है, कैसा अपार विश्वास होता है! हृदय से कैसे कैसे उद्गार निकलते हैं। वर्तमान कैसा आनंदमय दिखाई पड़ता है और भविष्य के

संबंध में कैसी लुभानेवाली कल्पनाएँ मन में रहती हैं। कैसा बिगाड़ होता है और कैसी आर्द्रता के साथ मेल होता है। कैसी क्षोभ से भरी बातें होती हैं और कैसी आवेगपूर्ण लिखा-पढ़ी होती है। कितनी जल्दी बातें लगती हैं और कितनी जल्दी मानना-मनाना होता है।

'सहपाठी की मित्रता' इस उक्ति में हृदय के कितने भारी उथल-पुथल का भाव भरा हुआ है, किंतु जिस प्रकार युवा पुरुष की मित्रता स्कूल के बालक की मित्रता से दृढ़, शांत और गंभीर होती है, उसी प्रकार हमारी युवावस्था के मित्र बाल्यावस्था के मित्रों से कई बातों में भिन्न होते हैं।

मैं समझता हूँ कि मित्र चाहते हुए बहुत-से लोग मित्र के आदर्श की कल्पना मन में करते होंगे, पर इस कल्पित आदर्श से तो हमारा काम जीवन की झंझटों में चलता नहीं। सुंदर प्रतिभा, मनभावनी चाल और स्वच्छंद प्रकृति ये दो चार बातें देखकर मित्रता की जाती है; पर जीवन-संग्राम में साथ देने-वाले मित्रों में इनसे कुछ अधिक बातें चाहिए। मित्र केवल उसे नहीं कहते जिसके गुणों की तो हम प्रशंसा करें, पर जिससे हम स्नेह न कर सकें, जिससे अपने छोटे-मोटे काम तो हम निकालते जायँ, पर भीतर ही भीतर घृणा करते रहें। मित्र सच्चे पथ-प्रदर्शक के समान होना चाहिए, जिस पर हम पूरा विश्वास कर सकें, उसे भाई के समान होना चाहिए जिसे हम अपना विश्वासपात्र बना सकें।

सुंदर मंत्रणा और सहारा देने के लिये सदा उद्यत रहते हैं; जिनके सुख और सौभाग्य की चिंता वे निरंतर करते रहते हैं।

ऐसे भी मित्र होते हैं जो विवेक को जागरित करना और कर्तव्य-बुद्धि को उत्तेजित करना चाहते हैं। ऐसे भी मित्र होते हैं जो टूटे जी को जोड़ना और लड़खड़ाते पाँवों को ठहराना जानते हैं। बहुतेरे मित्र हैं जो ऐसे दृढ़ आशय और उद्देश्य की स्थापना करते हैं जिनसे कर्म-क्षेत्र में वे आप भी श्रेष्ठ बनते हैं और दूसरों को भी श्रेष्ठ बनाते हैं।

मित्रता जीवन और मरण के मार्ग में सहारे के लिये है। यह सैर-सपाटे और अच्छे दिनों के लिये भी है तथा संकट और विपत्ति के बुरे दिनों के लिये भी है। यह हँसी-दिल्लगी के गुल-छर्रों में भी साथ देती है और धर्म के मार्ग में भी। मित्रों को एक-दूसरे के जीवन के कर्त्तव्यों को उन्नत करके उन्हें साहस-बुद्धि और एकता के द्वारा चमकाना चाहिए।

हमें अपने मित्र से कहना चाहिए—"मित्र! अपना हाथ बढ़ाओ। यह जीवन और मरण में हमारा सहारा होगा। तुम्हारे द्वारा मेरी भलाई होगी, पर यह नहीं कि सारा ऋण मेरे ही ऊपर रहे। हमारा भी उपकार होगा, जो कुछ तुम करोगे उससे तुम्हारा भी भला होगा। सत्यशील, न्यायी और पराक्रमी बने रहो, क्योंकि यदि तुम चूकोगे तो मैं भी चूकूँगा।

जहाँ-जहाँ तुम जाओगे, मैं भी जाऊँगा। तुम्हारी बढ़ती होगी तो मेरी बढ़ती होगी। जीवन के संग्राम मे वीरता के साथ लड़ो, क्योंकि तुम्हारी ढाल मैं लिए हूँ।"

रामचद्र शुक्ल

(आदर्श जीवन से)

पाठ-सहायक

अनुसंधान—खोज। हतोत्साह के समान हत लगाकर हतर्शन आदि शब्द बनाओ। आर्द्रता—सरसता, आवेगपूर्ण—तेज, जोश-भरी। प्रतिज्ञापत्र के समान अन्य शब्द बनाकर प्रयुक्त करो। उद्धत—उच्छृंखल, उद्दड, गुलछर्रों—मौज की बातों।

अभ्यास

१—मित्रता से क्या तात्पर्य है, मित्र और मित्रता का क्या उद्देश होना चाहिए?

२—मित्रता के लिये किन बातों या गुणों की आवश्यकता है?

३—जिन मित्रों का यहाँ उल्लेख किया गया है उनके सबध मे क्या जानते हो, संक्षेप में लिखो।

४—विशेषण बनाकर प्रयुक्त करो—

कर्तव्य, निज, विश्वास, आचरण, रुचि, समाज।

५—भिन्न भिन्न प्रकार की संज्ञाएँ बनाओ—

दृढ़, मनबहलाना, वाछनीय, अपना, खेलना।

६— सोदाहरण सिद्ध करो—"विश्वासपात्र मित्र . मिल गया।" (पृ० १९६)

७—सक्षेप रूप में उल्लिखित करो—

छात्रावस्था में·····मानना मनाना होता है (पृ० १९६-१९७)

८—कैसी क्रियाएँ हैं—इनकी पद-व्याख्या कर इन्हीं के समान अन्य क्रियाएँ खोजकर बताओ—

लिखा-पढ़ी होती है, मानना मनाना होता है।

९—द्वितीय अनुच्छेद की क्रियाओं का वाच्यपरिवर्तन करो।

१०—इस पाठ से जोड़ेवाले शब्द और मुहावरे चुनकर उनका प्रयोग करो।

११—मित्र से हमें क्या लाभ होता है ? इसी निबंध के आधार पर एक लेख लिखते हुए अपने व्यक्तिगत अनुभव लिखो और उदाहरण देकर उसके सिद्धांतों को पुष्ट करो।

संकेत—

१—तुलसीदास ने रामायण में मित्र पर जो कुछ लिखा है, उसे पढ़कर सुनाना और दोनो के सिद्धांतों की तुलना कराना।

२—मित्र-चयन के समान पुस्तक-चयन के भी विषय पर आवश्यक प्रकाश डालना।

(२३) सत्यहरिश्चंद्र (नाटक)

(स्थान—श्मशान, एक ओर दूर हरिश्चद्र टहलते हैं इधर शैव्या रोहिताश्व का शव लिये रोती है।*)

शैव्या—(पहली तरह से बहुत रोकर) हाय ! अब मैं क्या करूँ ? अब मैं किसका मुँह देखकर संसार मे जीऊँगी, हाय ! मैं आज से निपूती हुई, पुत्रवती स्त्री अपने बालको पर अब मेरी छाया भी न पड़ने देगी। हा ! नित्य सवेरे उठकर अब मैं किसकी चिंता करूँगी ? खाने के समय मेरी गोद मे बैठकर अब मुझसे माँग माँग कर कौन खायगा ? मैं परोसी थाली सूनी देखकर कैसे प्राण रखूँगी। (रोती है)

(फिर) खेलता खेलता आकर मेरे गले से कौन लिपट जायगा और माँ माँ कहकर तनिक तनिक बातो पर

---

* सूर्य-वशी अयोध्या-नरेश महाराज हरिश्चद्र ने स्वप्न में अपना सारा राज्य एक ब्राह्मण को दे दिया, सवेरे वह स्वप्न सत्य होगया, और विश्वामित्र ने विप्र बन (इन्द्र के कहने से राजा का सत्य छुड़ाने के लिये) आकर सब राज्य ले लिया और ७०० स्वर्णमुद्राएँ दक्षिणा मे माँगी, इनके लिये रानी, और राजकुमार तो काशी में एक ब्राह्मण के हाथ और राजा एक श्मशान-पति डोम के हाथ बिक गए। राजकुमार को फूल चुनते हुए फुलवाड़ी में सर्प ने काट लिया. वे मर गए, उनका दाह-संस्कार करने रानी रात मे श्मशान पहुँची, वहाँ वे विलाप कर रही हैं।

कौन हठ करेगा। हाय! अब किसका अपने अंचल से मुँह को धूल पोंछ कर गले लगाऊँगी, और किसके अभिमान से विपति मे भी फूली फूली फिरूँगा। (रोती है)

(फिर) लो जब रोहिताश्व भी नहीं तो मैं ही जी कर क्या करूँगी। (छाती पीटकर) हाय! प्राण! तुम अब भी क्यों नहीं निकले, हाय! मैं ऐसी स्वार्थी हूँ कि आत्म-हत्या करके नरक के भय से अब भी अपने को नहीं मार डालती। नहीं, अब मैं न जीऊँगी। या तो इस पेड़ में फाँसी लगाकर मर जाऊँगी या गंगा मे कूद कर प्राण दे दूँगी। (उन्मत्त की भाँति उठ कर वैठना चाहती है)

हरिश्चंद्र—(आड़ से)

तनहिं वेच दासी कहलाई। मरत स्वामि-आयसु बिन पाई॥
करु न अधर्म, सोच जिय माहीं। पराधीन सपने सुख नाहीं॥

शै०—(चौकन्नी होकर) अहा! यह किसने इस कठिन समय मे धर्म का उपदेश दिया? सच है, मैं अब इस देह की कौन हूँ जो मैं मर सकूँ। हा! दैव, तुझसे यह भी न देखा गया कि मैं मर कर भी सुख पाऊँ। (कुछ धीरज धर) तो चलूँ छाती पर वज्र धरके अब लोक की रीति करूँ।

(रोती है और लकड़ी की चिता बनाती है और कहती है)

हाय! जिन हाथो से जिसे रोज़ ठोंक कर सुलाती थी उन्हीं हाथो से आज इसे चिता पर कैसे रक्खूँगी।

जिसके मुँह में छाले पड़ने के भय से कभी मैंने गरम दूध भी नहीं पिलाया। उसे...(बहुत रोती है)

ह०—धन्य देवी! आखिर तो चंद्र-सूर्य्य-कुल की ही स्त्री हो। तुम न धैर्य धरोगी तो और कौन धरेगा।

शै०—(चिता बनाकर पुत्र के पास आकर उठाना चाहती है और रोती है।)

ह०—तो अब चलें और उससे आधा कफ़न माँगें। (आगे बढ़कर और बलपूर्वक आँसुओं को रोककर शैव्या से) महाश्मशान-पति की आज्ञा है कि आधा कफ़न दिए बिना कोई मुर्दा न फूँकने पावे सो तुम पहले हमें कपड़ा दे लो तब कोई क्रिया करो।

(कफन माँगने को हाथ फैलाता है, आकाश से पुष्प-वृष्टि होती है।)

नेपथ्य में

अहो धैर्य, बल, सत्य तव, अहो दान महराज।
कियौ भूप हरिचंद यह, सब लोकोत्तर काज॥

(दोनों आश्चर्य से ऊपर देखते हैं)

शै०—हाय! कुसमय में आर्यपुत्र की यह कौन स्तुति करता है। वा इस स्तुति ही से क्या है, शास्त्र सब असत्य हैं, नहीं तो आर्यपुत्र के धर्म से यह गति हो! यह केवल देवताओं और ब्राह्मणों का पाखंड है।

ह०—(दोनों कानों पर हाथ रखकर) नारायण! नारायण! महाभागे! ऐसा मत कहो। शास्त्र, ब्राह्मण और देवता त्रिकाल में सत्य हैं। ऐसा कहोगी तो प्रायश्चित्त करना होगा। अपना धर्म विचारो। लाओ, मृत का कंबल हमे दो और अपना काम आरंभ करो।

(हाथ फैलाता है)

शै०—(महाराज हरिश्चद्र के हाथ में चक्रवर्ती का चिह्न देखकर और कुछ स्वर तथा आकृति से अपने पति को पहिचान कर) हा आर्यपुत्र! इतने दिन तक कहाँ छिपे रहे! देखो अपने गोद के खेलाए दुलारे पुत्र की दशा! तुम्हारा प्यारा रोहिताश्व देखो अब अनाथ की भाँति मसान में पड़ा है। (रोती है)

ह०—प्रिये! धीरज धरो, यह रोने का समय नहीं है, देखो सवेरा हुआ चाहता है, ऐसा न हो कि कोई आ जाय और हम लोगों को जान ले, बस एक लज्जा-मात्र बच गई है, वह भी चली जाय, चलो कलेजे पर सिल रखकर अब रोहिताश्व की क्रिया करो और आधा कंबल हमको दे दो।

शै०—(रोती हुई) नाथ! मेरे पास एक भी कपड़ा नहीं था, अपना अंचल फाड़ कर इसे लपेट लाई हूँ। उसमें से भी जो आधा दे दूँगी तो यह खुला ही रह जायगा! हाय! चक्रवर्ती के पुत्र को आज कफ़न भी नही मिलता! (बहुत रोती है)

ह०—(बलपूर्वक आँसुओं को रोककर और बहुत धीरज धरकर) प्यारी ! रोओ मत, ऐसे ही समय मे तो धीरज और धर्म का रखना काम है। मैं जिसका दास हूँ उसकी आज्ञा है कि बिना आधा कफ़न लिए किसी को क्रिया मत करने दो, इसमें यदि अपनी स्त्री या अपना पुत्र समझ कर तुमसे इसका आधा कफ़न न लूँ तो बड़ा अधर्म हो। जिस हरिश्चंद्र ने उदय से अस्त तक की पृथ्वी के लिये धर्म को नहीं छोड़ा, उसके धर्म को आध गज़ कपड़े के लिये मत छुड़ाओ। और कफ़न से जल्दी आधा कपड़ा फाड़ दो। देखो सबेरा हुआ ही चाहता है! ऐसा न हो कि कुल-गुरु भगवान् सूर्य अपने वंश की दुर्दशा देखकर चित्त में उदास हों। (हाथ फैलाता है)

शै०—(रोती हुई) नाथ ! जो आज्ञा।

(रोहिताश्व के ऊपर का कंबल फाड़ा चाहती है, रंगभूमि की पृथ्वी हिलती है, तोप छूटने का-सा बड़ा शब्द और बिजली का-सा उजाला होता है, नेपथ्य में बाजे की और "बस-बस" धन्य धन्य" और "जय जय" की ध्वनि होती है, फूल बरसते हैं और भगवान् नारायण प्रकट होकर राजा हरिश्चद्र का हाथ पकड़ लेते हैं!)

भगवान्—बस, महाराज! बस! धर्म और सत्य सबकी परमावधि हो गई! देखो तुम्हारे पुण्य और भय से पृथ्वी बारंबार काँपती है। अब त्रैलोक्य की रक्षा करो! (नेत्रों से आँसू बहाते हैं)

ह०—(साष्टांग दंडवत् करके रोते हुए गद्गद स्वर से) हे भगवन् ! मेरे वास्ते आपने इतना परिश्रम किया ! कहाँ यह श्मशान-भूमि ! कहाँ यह मर्त्यलोक ! कहाँ मेरा मनुष्य-शरीर !! और कहाँ पूर्ण परब्रह्म सच्चिदानंद साक्षात आप !!! (प्रेम के आँसुओं और कंठ के गद्गद होने से कुछ कहा नहीं जाता।)

भ०—(शैव्या से) पुत्री ! अब सोच मत कर। धन्य तेरा सौभाग्य कि तुझे राजर्षि हरिश्चंद्र ऐसे पति मिले हैं। (रोहिताश्व की ओर देखकर) वत्स रोहिताश्व ! उठो, देखो तुम्हारे माता-पिता देर से तुम्हारे मिलने को व्याकुल हो रहे हैं ! (रोहिताश्व उठ खड़ा होता है) आश्चर्य से भगवान् को प्रणाम करके माता-पिता का मुख देखने लगता है।

(आकाश से फिर पुष्प-वृष्टि होती है।)

(सब कुछ कह नहीं सकते, आँखों से आँसू बहाते हैं और भगवान् के मुखारविंद की ओर देखते हैं।)

(श्री महादेव, पार्वती, भैरव, धर्म, सत्य, इंद्र और विश्वामित्र आते हैं और कहते हैं,) धन्य है ! महाराज हरिश्चंद्र ! धन्य है ! जो आपने किया सो किसी ने भी न तो किया ही है और न करेगा ही। (राजा हरिश्चंद्र शैव्या और रोहिताश्व सबको प्रणाम करते हैं)

वि०—महाराज ! यह केवल चंद्र-सूर्य तक आपकी कीर्ति को स्थिर रखने के हेतु हमने छल किया था सो क्षमा कीजिए और अपना राज्य लीजिए !

धर्म—महाराज ! राज्य आपका है। उसका मैं साक्षी हूँ। आप निस्संदेह लीजिए।

सत्य—ठीक है, जिसने हमारे अस्तित्व को संसार में प्रत्यक्ष कर दिखाया बस उसी का यह पृथ्वी का राज्य है !

महा०—पुत्र हरिश्चंद्र ! भगवान् नारायण के अनुग्रह से ब्रह्म-लोकपर्यंत तुमने राज्य पाया। तथापि मैं आशीर्वाद देता हूँ कि तुम्हारी कीर्ति जब तक पृथ्वी है तब तक स्थिर रहे और रोहिताश्व दीर्घायु, प्रतापी और चक्रवर्ती हो !

पा०—पुत्री शैव्ये ! तुम्हारे पति के साथ तुम्हारी भी कीर्ति स्वर्ग की स्त्रियाँ गाएँ। तुम्हारी पुत्र-वधू सौभाग्यवती हो और लक्ष्मी तुम्हारे घर का कदापि त्याग न करे।

(हरिश्चंद्र और शैव्या प्रणाम करते हैं)

भैरव—जो तुम्हारी कीर्ति कहे, सुने और उसका अनुसरण करे उसको भैरवी यातना कदापि न हो !

इंद्र—(राजा को आलिंगन करके और हाथ जोड़ के) महाराज ! मुझे क्षमा कीजिए। यह सब मेरी ही तो दुष्टता परंतु इस बात से तो आपका कल्याण ही हुआ। स्वर्ग की कौन कहे आपने अपने सत्य से ब्रह्मपद भी पा लिया। देखिए, आपकी रक्षा के हेतु श्री शिव जी भैरवनाथ की आज्ञा से आपके उपाध्याय बने थे, नारद जी बटु बने थे, साक्षात् धर्म ने आपके हेतु चंडाल और कापालिक का भेष

धारण किया और सत्य ने आप ही के कारण चंडाल के अनुचर और वैताल का रूप धारण किया। न ता आप बिके हैं और न दास ही हुए हैं। यह सब चरित्र भगवान् नारायण की इच्छा ही ने केवल आपके सुयश-प्रस्तार के हेतु किया है।

ह०—(गदगद स्वर से) अपने दासों का यश बढ़ानेवाला और कौन है!

भ०—महाराज! और भी जो इच्छा हो माँगो!

ह०—प्रणाम करके (गद्गद स्वर से) प्रभो! आपके दर्शन ही से सब इच्छाएँ पूरी हो गईं तथापि आपके आज्ञानुसार यह और वर माँगता हूँ कि मेरी प्रजा भी मेरे साथ वैकुंठ जाय और सत्य सदा पृथ्वी पर स्थिर रहे।

भ०—एवमस्तु, तुम ऐसे ही पुण्यात्मा हो कि तुम्हारे कारण अयोध्या के कीट, पतंग और जीव-मात्र सब परमधाम जायँगे, और कलियुग में भी जब धैर्य के सब चरण टूट जायँगे तब भी तुम्हारे इच्छानुसार सत्यमात्र एक पद से स्थिर रहेगा। इतना ही देकर मुझे संतोष नहीं होता। कुछ और भी माँगो! मैं तुम्हें क्या क्या दूँ, क्योंकि मैं तो अपने ही को तुम्हें दे चुका। तथापि इच्छा यही है कि तुमको और कुछ वर दूँ। तुम्हें वर देने में मुझे संतोष नहीं होता।

ह०—(हाथ जोड़ कर) भगवन् ! मुझे अब कौन-सी इच्छा है, मैं और क्या वर माँगू । तथापि भारत का यह वाक्य सुफल हो—

खल जनन सो सज्जन दुखी नहिं होहिं, हरि-पद-रति रहै ।
अपधर्म छूटैं, स्वत्व निज भारत गहै, दुख-दल बहै ॥
बुध तजहिं मत्सर, नारि नर सम होहिं, सब जग सुख लहै ।
तजि निंद्य कविता, सुकवि जन, प्रभु-गुन-सुधा बानी कहै ॥

(पुष्प-वृष्टि और बाजों की ध्वनि के साथ यवनिका गिरती है ।)

(हरिश्चद्र नाटक से) —भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र

पाठ-सहायक

इसका पूरा वर्णन भारतेंदु-कृत नाटक मे जिसका एक अश यहाँ दिया गया है, अथवा "रत्नाकर" जी के "हरिश्चद्र" नामक काव्य में देखो। **निपूती**—(निः—नहीं + पूती—पुत्री, पुत्रवाली) पुत्र-हीना, **प्रायश्चित्त**—किसी पाप के प्रतिकार का विधान, **रंगभूमि**—(नाटक खेलने का स्थान) घटना-स्थल, **नेपथ्य**—(गुप्तस्थान) नाटक के रग-मंच का छिपा हुआ स्थान, **यातना**—दुःख, पीड़ा, **यवनिका**—नाटक का परदा, जो नाटकात पर गिराया जाता है । **एवमस्तु**—(एवम्—ऐसा ही + अस्तु—हो—संस्कृत) ऐसा ही हो, तथास्तु ।

अभ्यास

१—हरिश्चंद्र की पूरी कथा सक्षेप में लिखो ।

२—इस प्रसग से तुम्हें हरिश्चद्र और शैव्या के चरित्रों का क्या ज्ञान होता है ?

३—हरिश्चद्र की रक्षा के लिये किसने क्या किया ?

४—इस पाठ की भाषा में क्या विशेषता है, स्पष्ट उदाहरण देकर लिखो।

५—हरिश्चंद्र ने भगवान् से क्या क्या वरदान माँगे, उनसे उनके किस विशेष गुण की झलक मिलती है?

६—अंतिम छंद का सान्वय अर्थ लिखो।

७—खड़ी बोली में रूपांतरित करो और पद-व्याख्या करो।

सो, होहि, गहैं, तजहिं, तजि।

८—मूल शब्द बताओ और नवीन शब्द बनाकर प्रयुक्त करो—

मर्त्य, स्वत्व, निपूती, मसान, राजर्षि।

९—भिन्न भिन्न अर्थों में प्रयुक्त करो—

चरण, गति, छाया, फूली, फूली।

१०—इस पाठ से मुहावरे चुनो और उनका प्रयोग करो।

११—रिक्त स्थानों की पूर्ति करो—

महाराज! मुझे—कीजिए,—सब—की तो दुष्टता—इस बात—आपका—हुआ। स्वर्ग—कहे—अपने सत्य से—भी—लिया देखिए,—रक्षा—श्रीशिव जी—की आज्ञा—उपाध्याय—थे।

संकेत—

१—हरिश्चंद्र की संपूर्ण कथा सुनाना और "हरिश्चन्द्रकाव्य" का परिचय देना।

(२४) रावण और अंगद

दोहा—अंगद कूदे गये जहाँ, आसनगत लंकेस।
मनु मधुकर कर हाट पर, सोभित स्यामल बेस ॥१॥

रावण—कौन हो, पठये सो कौन ? इहाँ तुम्हैं कह काम है ?
अंगद—जाति बानर, लंकनायक ! दूत, अंगद नाम है ॥
रावण—कौन है वह ? बाँधिकै हम देह, पूँछ सबै दही।
लंक जारि संहारि अच्छ गयौ सो बात वृथा कही ॥२॥
महोदर—कौन भाँति रहो तहाँ तुम राज-प्रेषक जानिए।
लंक लाइ गयो जो बानर कौन नाम बखानिए ॥
मेघनाद जा बाँधियौ वहि मारियौ वहुधा तबै।
अंगद—लोक-लाज दुर्यो रहै अति जानियै न कहा अबै ॥३॥
रावण—कौन के सुत ? बालि के, वह कौन बालि ? न जानिए।
अंगद—काँख चापि तुम्हें जो सागर सात न्हात बखानिए ॥
रा०-अं०-है कहाँ वह वीर ? अंगद देव-लोक बताइयौ।
क्यो गयौ ? रघुनाथ-बान-विमान वैठि सिधाइयौ ॥४॥
लंक-नायक को विभीषन देव दूषन को दहै।
मोहिं जीवित होरिं क्यों जग तोहिं जीवत को कहै।
मोहिं को जग मारिहै दुर्बुद्धि तोरिय जानिए ?
रावण—कौन बात पठाइयौ कहि वीर बेगि बखानिए ? ॥५॥

अंगद

श्री रघुनाथ को वानर 'केशव' आयो हौ एकु न काहू हयौ जू।
सागर को मद झारि, विदारि त्रिकूट की देह विहारि छयौ जू॥
सीय निहारि सँहारि कै राकस सोक असोक बनीहिं दयौ जू।
अच्छकुमारहिं मारिकै लंकहिं जारिकै नीकेहि जात भयौ जू॥६॥

गंगोदक छंद

राम राजान के राज आए इहाँ,
धाम तेरे महाभाग जागे अबै।
देवि मंदोदरी कुम्भकर्णादि दै,
मित्र-मंत्री जितै पूछि देखो सबै॥
राखिए जाति को भाँति को वंस को,
साधिए लोक मे लोक वा लोक को।
आनि कै पाँ परौ देसु लै कोसलै,
आसुरी ईस सीताहिं लै ओक को॥७॥

रावण—लोक-लोकेस सों सोचि ब्रह्मा रचैं,
आपनी आपनी सींव सों सो रहैं।
चारि बाहैं धरे विष्णु रच्छा करैं,
बात साँची यहै वेद बानो कहै॥
ताहि भ्रू-भंग ही देव देवेस सो,
विष्णु ब्रह्मादि दै रुद्र जू संहरैं।

ताहि हौं छोड़िकै पाँय काके परौं,
आज संसार तो पाँय मेरे परै ॥८॥

मदिरा छंद

रावण-अंगद

राम को काम कहा, रिपु जीतहिं, कौन कबै रिपु जीत्यौ कहा।
बालि बली, छल सों भृगु-नंदन गर्ब दहे, द्विज दीन महा॥
दीन सों क्यों छिति-छत्र हत्यौ बिन प्राननि क्यौं हय-राज कियौ।
हैहय कौन, वहै बिसर्‌यौ जिन खेलत ही तुम्हैं बाँधि लियौ॥९॥

विजय छंद

अंगद

सिंधु तर्‌यौ उनका बनरा, तुम पै धनु-रेख गई न तरी।
बाँधत बाँधत सो न बँध्यौ उन बारिधि बाँधि कै बाट करी॥
अजहूँ रघुनाथ-प्रताप की बात, तुम्हैं दसकंठ न जानि परी।
तेलनि-तूलनि पूँछ जरी, न जरी गढ़ लंक जराइ जरी॥१०॥

मेघनाद

छोड़ि दियौ हमहीं बनरा वह, पूँछ की आग न लंक जरी।
भीर में अच्छ मर्‌यौ चपि बालक, बादिहिं जाइ ऽसस्ति करी॥
ताल बिंधे अरु सिंधु बँधे, यह चेटक विक्रम कौन कियौ।
बानर को, नर को बपुरा, पल मे सुर-नायक बाँधि लियौ॥११॥

अंगद-रावण

चेटक सों धनुभंग कियौ प्रभु रावरे को अति जीरन है।
बान समेत रहे पचिकै तुम जापहँ पै न तज्यौ धनु है॥

बान सो कौन, बली बलि के सुत, वै बलि बावन बाँधि लियौ।
आई सो तौ जिनकी चिर चेरिन, नाच नचाइ कै छाँड़ि दियौ ॥१२॥

रावण

नील-सुखेन-हनू उनके नल और सबै कपि पुंज तिहारे।
आठहु[1] आठ दिसा बलि दै अपनो पद लै पितु जा लगि मारे॥
तोसे सपूतहिं जाइकै बालि अपूतन की पदवी पगुधारे।
अंगद संग लै मेरो सबै दल आजुहिं क्यो न हनै बपु-मारे ॥१३॥

दोहा—जो सुत अपने बाप को, बैर न लेइ प्रकास।
तासो जीवत ही मर्यौ, लोग कहैं तजि त्रास ॥१४॥
अंगद—इनको बिलगु न मानिए, कहि 'केसव' पल आधु।
पानी, पावक, पवन, प्रभु, ज्यौं असाधु त्यौं साधु ॥१५॥

द्रुतविलंबित छंद

रावण

उरसि[2] अंगद लाज कछू गहौ। जनक-घातक बात वृथा कहौ।
सहित लच्छमण रामहिं संहरौं। सकल वानर-राज तुम्हैं करौं ॥१६॥

निशिपालिका छंद

अंगद—सत्रु सब मित्र हम चित्त पहिचानहीं।
दूत-बिधि नूत कबहूँ न उर आनहीं ॥

१ नील, नल, सुषेन, हनुमान, सुग्रीव, विभीषण, लच्मण और राम।
२ उरसि—सं०—उर मे।

आपु मुख देखि अभिलाष अभिलाखहू।
राखि भुज-सीस तब और कहँ राखहू ॥१७॥

इंद्रवज्राछंद

रावण

मेरी बड़ी भूल सो का कहौं रे। तेरो कह्यौ दूत सारो सहौं रे॥
वै जो सबै चाहतै तोहिं मार्‌यो। मारौं कहा तोहिं जो दैव मार्‌यो॥१८॥

उपेंद्रवज्रा छंद

अंगद

नराच श्रीराम जबै धरैंगे। असेष माथे कटि भू परैंगे॥
सिखा सिवा स्वान गहे तिहारी। फिरैं चहूँ ओर निरे बिहारी॥१९॥

भुजंगप्रयात छंद

रावण—महामीचु दासी सदा पाँव धोवै;
प्रतीहार ह्वैकै कृपासूर जोवै।
छपानाथ लीन्हे रहै छत्र जाको,
करैगो कहा सत्रु सुग्रीव ताको॥
सखा मेघ-माला, सिखी पाककारी,
करै कोतवाली महा दण्डधारी॥
पढ़ै वेद ब्रह्मा सदा द्वार जाके,
कहा बापुरो सत्रु सुग्रीव ताके॥२०॥

विजय छंद

अंगद

पेट चढ़्यौ पलना पलिका चढ़ि पालकिहू चढ़ि मोह मढ़्यौरे ॥
चौक चढ़्यौ चित्रसारी चढ़्यौ गज-बाजि चढ़्यौ गढ़ गर्व चढ़्यौरे ॥
स्याम बिमान चढ़्यौई रह्यौ कहि 'केसव' सो कबहुँ न पढ़्यौरे ॥
चेतन नाहिं रह्यौ चढ़ि चित्त सो चाहत मूढ़ चिताहू चढ़्यौरे ॥२१॥

भुजंगप्रयात छंद

रावण—निकार्‌यौ जु भैया लियौ राज जाको।
दियौ काढ़ि कै जू कहा त्रास ताको ॥
लिए बानरालो, कहौं बात तो सों।
सो कैसे लरै राम संग्राम मोसों ॥२२॥

विजय छंद

अंगद

हाथी न साथी न घोरे न चेरे न गाँव न ठाँव को ठाँव बिलैहै।
तात न मात न पुत्र न मित्र न वित्त न तीय कहूँ सँग रैहै ॥
'केसव' काम को राम बिसारत और निकाम न कामहिं ऐहै।
चेत रे चेत अजौं चित अंतर अंतक-लोक अकेलोई जैहै ॥२३॥

भुजंगप्रयात छंद

रावण

डरै गाय विप्रै अनाथै जो भाजै। परद्रव्य छाँड़ै परस्त्रीहिं लाजै ॥
परद्रोह जासों न होवै रती को। सु कैसे लरै वेष कीन्हे जती को ॥२४॥

दोहा—गेंद कर्‌यौ मैं खेल को, हर-गिरि 'केसवदास'।
सीस चढ़ाये आपने, कमल-समान सहास ॥२५॥

दंडक छंद

अंगद—जैसो तुम कहत उठायौ एक गिरिवर,
ऐसे कोटि कपिन के बालक उठावहीं ॥
काटे जो कहत सीस काटत घनेरे घाघ,
मग्गर के खेले कहा भट-पद पावहीं ॥
जीत्यौ जो सुरेसगण सापऋषि नारिही को,
समुझहु हम द्विज नाते समुझावहीं ॥
गहौ राम-पाय सुख पाय करैं तपी तप,
सीताजू को देहु देव दुन्दुभी बजावहीं ॥२६॥

वंशस्थ छंद

रावण

तपी-जपी विप्रनि छिप्र ही हरौं। अदेवद्वैषी सब देव संहरौं॥
सिया न दैहौं यह नेम जी धरौं। अमानुषी भूमि अवानरी करौं॥२७॥

विजय छंद

अंगद—पाहन ते पतिनी करि पावन, टूक कियौ हर के धनु को रे।
छत्र-विहीन कर्‌यौ छन में, छितिगर्व हन्यौ तिनके बल को रे॥
पर्वतपुंज पुरैन के पात, समान तरे अजहूँ धर को रे।
होइ नरायनहूँ पै न यो गुन, कौन इहाँ नर-वानर को रे॥२८॥

चंचरीक छंद

रावण—देहिं अंगद राज तो कहँ मारि वानर-राज को।
बाँधि देहि विभीषणो अरु फोरि सेतु-समाज को॥
पूँछ जारहिं अच्छरिपु को पाइ लागहिं रुद्र के।
सीय को तब देहुँ रामहिं पार जाहिं समुद्र के॥२९॥
अंगद—लंक लाय गयौ बली हनुमंत संतन गाइयौ।
सिंधु बाँधत सोधिकै नल छीर-छीट बहाइयौ॥
ताहि तोहिं समेत अंध उखारिहौं उलटी करौं।
आजु राज कहाँ विभीषण बैठि हैं तेहिते डरौं॥३०॥
दोहा—अंगद रावण को मुकुट, लै करि उड़्यौ सुजान।
मनो चलो यमलोक को, दससिर कौ प्रस्थान॥३१॥

(रामचंद्रिका से) —केशवदास

पाठ-सहायक

त्रिकूट—लंका का पर्वत, राकस—राक्षस, पाँ—पाँय, आसु—(सं० आशु) शीघ्र, ओक—घर, हैहय-राज—सहस्रबाहु—परशुराम के मामा, तूलनि—रुई, वादिहि—व्यर्थ ही, बपुरा—बेचारा, चेटक—तमाशा, खेल, बपु—शरीर—बाप, छपानाथ—(छपा—रात्रि) चन्द्रमा, प्रतीहार—द्वारपाल, वानराली—वानर-समूह, टुक—टुकड़ा।

अभ्यास

१—रावण और अंगद की बातचीत को अपनी हिंदी में लिखो।

२—रावण ने अंगद को अपनी ओर मिलाने का कैसे प्रयत्न किया और उससे क्या कहा?

३—राम की सेना के किन प्रमुख नायकों का उल्लेख यहाँ किया गया है उनके विषय में क्या जानते हो ?

४—शुद्ध संस्कृत शब्द बताओ—

अच्छकुमार, न्हात, राकस, कोस, छपानाथ, प्रसस्त, काँख।

५—खड़ी बोली में रूपांतरित कर पद-व्याख्या करो—

-देहिं, मारि, बिभीषणै, जारहि, परिइ, देहुँ।

६—छं० नं० १० और २० का सान्वय भावार्थ लिखो।

७—छं० नं० २६ को गद्य में रूपांतरित करो।

८—रावण और राम के युद्ध-संबंधी जिन जिन घटनाओं की ओर, यहाँ संकेत किया गया है; उनके विषय में तुम क्या जानते हो ?

९—पर्यायवाची शब्द लिखो—

छपा, छपानाथ, मेघ, ब्रह्मा, रुद्र, वारिध।

१०—विपर्यायी शब्द बताओ—

सुजान, शाप, भट, निकाम।

११—भिन्न भिन्न अर्थों में प्रयुक्त करो—

दल, राज, भाग, बस।

संकेत—

१—तुलसीकृत रामायण से अंगद-रावण-प्रसंग पढ़ा कर दोनों की तुलना कराना।

२—केशव, उनकी भाषा, कवितादि का परिचय देना।

(२५) ग्रीष्म

कहाँ तो ऋतुराज का सौख्यमय संगठन—जिसमे बाल-वृद्ध, युवा-युवती, निर्धन-सधन, ग्रामीण-नागरिक, निरक्षर-साक्षर, रोगी-नीरोग, पशु-पक्षी, गुल्म-लता, वनस्पति, स्थावर, जंगम—सभी नवजीवन में परिणत होकर अलौकिक शक्ति से अकथनीय आनंद के उपभोग में मग्न रहते थे; सारा संसार ही आनंदमयी, रसमयी और लावण्यमयी लहरों मे लहराता हुआ प्रतीत होता था, कवियों की लेखनी भी अद्भुत सज-धज के साथ प्रकृति के प्रांगण में नृत्य करने लगती थी—और कहाँ ग्रीष्म का भीष्म प्रताप, जिसके कारण दीर्घांगिनी यामिनी भी अत्याचार के भय से संकुचित हो, छिपने के लिये प्रयत्न करती है। ऐसा भयंकर व्यवहार हो रहा है, जिसके सामने राजा वेणु[1] की उच्छृङ्खलता को भी मस्तक नीचा करना पड़ता है। जिस ओर भी दृष्टि जाती है उसी ओर प्रत्येक वस्तु अपनी रक्षा करने में तन्मय देख पड़ती है। आमोद-प्रमोद का तो किसी को ध्यान ही नहीं है।

यह देखो, ग्रीष्म से पीड़ित जल भी यद्यपि उसी की हाँ में हाँ मिलाने के लिये उद्यत होकर उसका सहकारी बना

१—प्राचीन काल में यह एक राजा हो गया है, इसने प्रजा को बहुत पीड़ित किया था।

हुआ है, तथापि एक-दम पृथ्वी में विलीन होता चला जा रहा है।

ग्रीष्म का शत्रु बर्फ़ पर्वतों में छिपा बैठा था, किंतु अब पर्वत भी उसको धक्के दे-देकर घर से बाहर निकाल रहे हैं। बेचारे बर्फ़ के ढेले, दुःख से द्रवीभूत हो, लुढ़कते-पुढ़कते रात में शरण खोजते हुए पलायन कर रहे हैं। शीत ता स्वयं ग्रीष्म का प्रबल शत्रु है। किंतु अब उसके भी पैर उखड़ गए हैं। वह अब इधर-उधर भागता फिरता है। कहीं गिरि-कंदरा में छिपता है, तो कहीं कुओं के भीतर जा बैठता है। कभी कभी बरगद के पैरों पड़ता है, कदली-पत्र, कपूर, वापी, व्यजन और चंद्र-ज्योत्स्ना इत्यादि सभी के यहाँ अपना कुछ न कुछ प्रस्थान रखकर वह आश्रय खोज रहा है। एक-मात्र अंधकार ही उसका पक्का साथी और सहायक है। शीत ने उसी के यहाँ अपना डेरा जमाया है।

बहुत-से रईसों और ज़मींदारों ने भी उसे आश्रय देने का वचन दिया है। शीत की रक्षा के लिये दुर्ग तैयार किए गए हैं। दुर्गों में ख़स की दीवारें हैं जो सदैव जल से सींचे जाने से चिकनी रहती हैं। भीतर धारागृहों में फ़ुव्वारों की सदैव झर-झराहट होती रहती है। वहाँ ग्रीष्म के प्रधान दूत सूर्यदेव को प्रवेश न करने देने के लिये तीव्र नियम तैयार किए गए हैं। शीतदेव वहाँ, छिपे छिपे समय बिताते हैं।

परंतु प्रचंड-प्रताप तापराज ने उन दुर्गों पर भी आधिपत्य जमाने के लिये सर्वत्र गति-शील अपने दूत मध्याह्नकालीन वीर

वायु को आज्ञा दे दी है। वह भी बड़े वेग से, पवन-चक्र-रूपी व्यूह की रचना करके, पृथ्वी के रजःकणों की सेना के साथ, चारों ओर अंधकार फैलाता हुआ उन दुर्गों को धूल मे मिला देने के लिये असाधारण वीरता दिखला रहा है। वह मर्मर-ध्वनि के साथ विकराल रूप धारण करके शीत के आश्रयदाता वृक्षों को भी उखाड़ता-पछाड़ता जाता है।

ग्रीष्म के सहचर बंधु, सहस्रांशु सूर्यनारायण भी, प्रति-दिन उदय होते ही ऐसा प्रचंड रूप धारण कर लेते हैं, मानो वसंत के सखा मनोज को भस्म करने के लिये भगवान् रुद्र का तीसरा नेत्र[1] खुला हो। अथवा यह सूर्य नहीं, यह तो ग्रीष्म के आवागमन के लिये नया द्वार खोला गया है। अथवा वसंत की देखा-देखी स्वयं ग्रीष्मराज भी प्रकृति देवी के साथ, सूर्य-रूप पिचकारी लेकर असंख्य किरणों के द्वारा अग्नि-कणों की वर्षा करके होली का त्यौहार मना रहे हैं। प्रकृति देवी भी धूल के कुमकुमे बना बना कर ऊपर को फेंकने मे तत्पर है। या सूर्य-रूप देदीप्यमान मशाल लिए दिग्विजयी ग्रीष्म-देव शीत-शत्रु को खोज तो नहीं रहे हैं।

१—महादेव जी के भाल पर एक तीसरा नेत्र है, जिसमे प्रलयानल की कराल ज्वाला रहती है। इसी से उन्होंने मदन का दहन किया था। यह नेत्र प्रलय-काल के अतिरिक्त अन्य समय नहीं खुलता।

प्रचंड मार्तंड ने अखंड भूमंडल को प्रतप्त करके अपना-सा कर लिया है। नभ-चरो को पीड़ित करने में सूर्यदेव और स्थल-चरों को पीड़ित करने मे तवे की भाँति तपा हुआ धरातल कुछ कमी नहीं कर रहा है। पक्षी चिल्ला चिल्ला कर आकाश में चक्कर काट रहे हैं। चीलो का चीत्कार भयावना लगता है। सारा गगन-मंडल तपे हुए ताँबे की भाँति चमकता हुआ, नेत्रो में चकाचौंध कर रहा है।

जंगलों मे गर्मी से व्याकुल हो जीव, अपने स्वाभाविक विरोध को भूलकर, परस्पर एक दूसरे की शरण ले रहे हैं*। उष्णता से पीड़ित मृगराज एक कंदरा मे निश्चेष्ट पड़ा है। एक मृग भी कहीं से भागा आया है और सोये हुए सिंह के पेट से लगकर सो रहा है। कही धरती पर पड़े हुए अजगर को सूँड से उठाकर, उसके आलिंगन से, भीमकाय हाथी अपनी तप्त सूँड को शीतल कर रहा है। कहीं रीछ और बाघ हाँफते हाँफते उस भीमकाय हाथी के नीचे, उसकी छाया मे, सिर झुकाये खड़े हैं। जहाँ नाममात्र के लिये भी जलाशय है वहाँ शूकरो के झुंड के झुंड टूट पड़े हैं। प्यास से व्याकुल चीता उन्हें चाट रहा है और वे भी उसकी कोमल शीतल जिह्वा के स्पर्श का सुख पाकर चुपचाप खड़े हैं।

---

*—कहलाने एकत बसत, अहि-मयूर, गज-बाघ।
जगत तपोवन-सम कियौ, दीरघ दाघ निदाघ॥

—बिहारी

तृषार्त हरिणों के झुंड के झुंड मृग-मरीचिका के भ्रम में पड़ कर भागते हैं, परंतु वहाँ भी जल न पाकर, विवश हो, क्षण भर के लिये खड़े रह जाते हैं और दूसरे ही क्षण गरमी से व्याकुल हो उड़ान भरते हैं। जंगल एकदम निर्जीव-सा प्रतीत होता है। पृथ्वी पर कहीं एक चींटी भी नहीं देख पड़ती। वह भी वृक्षों पर चढ़ी चली जा रही है। सारे वन-उपवन तप्त हैं; धरातल तप्त हैं; भूधर तप्त हैं; वृक्ष तप्त हैं; लताएँ तप्त हैं; नदियाँ तप्त हैं; पल्लव तप्त हैं। नीचे तप्त, ऊपर तप्त, इधर तप्त, उधर तप्त—समस्त जगत् तापमय हो रहा है।

उधर वृक्ष के कोटर में स्थित शुक-शावक चोंच खोल कर जीभ निकालते हुए जल की इच्छा से बाहर की ओर सिर डाल रहे हैं, परंतु ज्यों ही सर-सर चलनेवाली गरम हवा का थपेड़ा लगता है त्यों ही बेचारे आँख मींच कर, चुपके से फिर भीतर सरक जाते हैं।

इस भीषण प्रलयकारी ग्रीष्म की दृष्टि से ग्राम, नगर और जनपद भी न बच सके; वहाँ भी सर्वत्र इसके सहकारियों की धूम है। नगरों की सड़कें तो ऐसी लगती हैं, मानों प्रकृति ने जीवों को भूनने के लिये तवा रखकर उसके नीचे आग जला रक्खी है। तनिक उन बेचारे पथिकों की ओर भी देखिए जिनके पास जूती और छतरी नाम लेने को भी नहीं। वे ओफ़ ओफ़ करते, पैरों को सुहराते, मृग-गति से लपके हुए चले जा रहे हैं। बड़े बड़े राज-प्रासाद उत्तप्त हो, दूर से ही अपनी ऊष्मा

को छोड़ते हुए, विकट अजगर की भाँति श्वास-सा ले रहे हैं। मनुष्य भी किसी तरह इससे प्राण-रक्षा कर एकदम भीतर ही छिपे पड़े हैं।

क्या निर्धनी और क्या नृपति—प्रायः सभी लोग अत्याचारी ग्रीष्म के हाथों लुट जाने के भय से, दरिद्र-वेष मे, आभूषण-हीन, वस्त्र-विहीन होकर, दैन्य-भाव से समय बिताने में त्रस्त रहते हैं। उधर ग्रीष्म ने भी सबके यहाँ से सुवर्ण-चाँदी-पीतल आदि के बर्तनों को उठवा; उनके स्थान पर मिट्टी के बर्तन रखवा दिए हैं। प्रत्येक आदमी के हाथ मे तृण (पंखा) दिलवा दिया है।

घर्मार्त्त मनुष्यों के शरीरों पर स्वेद ने मानों चिरकाल के लिये आधिपत्य-सा जमा लिया है। रोम-राजियो मे प्रथम उसका अल्प रूप में प्रादुर्भाव होता है। थोड़ी देर के पश्चात् मोतियो के रूप में परिणत होकर वह ग्रीष्म के हास्य को परिलक्षित करता है। इसके पश्चात्, एक एक बिंदु आपस मे मिलकर, सोते का रूप धारण करके प्रत्येक अंग से झरने लगते हैं, मानों बाह्य ऊष्मा से संतप्त शरीर को शीतल करने के लिये अंतरात्मा ने वारि-वर्षण किया हो। बाह्य जगत् के मंदिरो मे धारागृहों और फ़व्वारों की स्पर्धा से ही मानो शरीर-मंदिर मे भी प्रकृति-देवी ने पसीने के सोते बहा दिए हैं।

यह देखो, अल्पवयस्क बालक माता की गोद से उतर कर घुटनों के बल धरती पर चलते चलते ज्यों ही किसी वस्तु को

उठाकर मुख पर रखते हैं त्यों ही उनके कोमल पल्लव जैसे ओष्ट, ग्रीष्म की ज्वाला से जलती हुई उस तप्त वस्तु से झुलस जाते हैं। बस, तुरंत ही चुपके से उसको छोड़ वे अपने प्रबल अश्रु-रोदन का अवलंबन करते हैं। निर्दय ग्रीष्म! इन निरीह बालकों को तो शक्ति देता, परंतु अशांतिमय में भला शांति कहाँ।

भगवन् कालदेव! आप भी भय मान कर ग्रीष्म का साथ देने को तुले हुए हैं। क्या किसी और ऋतु में दिवस न होते थे जो आप उनमें अपने दिवसांग को विस्तृत कर सकते? परंतु आप भी तो मनुष्यों को कष्ट देना चाहते थे। इसी से तो सब ऋतुओं की अपेक्षा ग्रीष्म के दिन लगातार बढ़े चले जा रहे हैं। इतने लंबे दिन हैं कि किसी प्रकार काटे नहीं कटते।

सर्वत्र रूक्षता का अनुभव होता है। तनिक दुपहरी को तो देखिए, आधी रात के समान सन्नाटा खिंचा है। मनुष्य का कहीं शब्द भी नहीं सुन पड़ता, दर्शन होना तो दूर की बात है। यदि शब्द है तो केवल लू के विजय-दुंदुभि-नाद का, या है वृक्षों से पत्ते गिरने का चुरमुर शब्द, या कपाटों के फरफर होने का। ऐसे विकट समय में यदि कोई मनुष्य निद्रा के वशीभूत हो इस संकट से बचना चाहता है तो पसीने की धारा उसके सिर से बहकर कभी कानों मे या मुख में अथवा कभी नेत्रों में जाकर, अपने क्षारयुक्त गुण से चुन-मुनाहट उत्पन्न करती है और तत्काल ही उसे जगा देती है।

इस तरह सर्वत्र बेचैनी का राज्य है, भयंकरता का साम्राज्य है। इसी अन्याय और निर्दय कर्म के कारण सूर्यदेव का मुख-मंडल, मध्याह्न काल में भी, मलिन हो रहा है। लोगों की इन पर जैसी श्रद्धा-भक्ति प्रातःकाल थी, वैसी अब नहीं है; यहाँ तक कि सूर्य के संमुख होने में भी लोग संकोच करते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि इसी से लज्जा के मारे पश्चिमा-दधि में निमज्जित होने को सूर्यदेव भी फुर्ती से भागे जा रहे हैं।

—उमाशंकर द्विवेदी

पाठ-सहायक

स्थावर—अचल, जंगम—चर, चलनेवाले, उच्छृङ्खलता—(उत् + शृंखलता) स्वच्छंदता, मनमानी करना कदली—केला, सहस्रांशु—(सहस्र, हज़ार, यहाँ अनिश्चितार्थ में + अंशु)—किरण. तृषार्त—प्यास से व्याकुल, रोम-राजियाँ—रोमावलियाँ, निमज्जित—मग्न।

अभ्यास

१—वसंत का कैसा चित्र प्रथम खींचा गया है, क्या उसे बढ़ाकर तुम वसंत का सुंदर वर्णन कर सकते हो ?

२—किस अनुच्छेद में ताप या तप्त शब्द का बार बार प्रयोग किया गया है, ऐसा करने से ताप की व्यापकता एवं अधिकता ज्ञात होती है, इसी ढंग से तुम वसंत वर्णन में सुंदर या अन्य किसी शब्द का प्रयोग करो।

३—इस पाठ की भाषा में क्या विशेषता देखते हो, इस प्रकार की भाषा से यह पाठ कैसा हो गया है ?

४—स्वेद, सूर्य-ताप, सूर्योदय, आदि के वर्णनों में कैसे उपमान रक्खे गए हैं स्पष्ट लिखो।

५—राजा वेणु और रुद्र के तृतीय नेत्र के विषय में संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखो।

६—शीत की रक्षा कहाँ और कैसे होती है,—ग्रीष्म के प्रभाव से प्रकृति में, पशु-पक्षियों में क्या विलक्षणता आ गई है?

७—मूल शब्द बताओ और नियम लिखो—

आधिपत्य, देदीप्यमान, दैन्य, बाह्य, निमज्जित।

८—सविग्रह समास बताओ, और साधु-विग्रह करो—

प्रादुर्भाव, निरीह, घर्मार्त्त, सहस्रांशु, दीर्घांगिनी, प्रयामिनी।

९—भावार्थ लिख अपने वाक्यों में प्रयोग करो—

मस्तक नीचा करना, लुढ़कते-पुढ़कते, डेरा जमाना, चक्कर काटना, थपेड़ा लगाना।

१०—अंतिम अनुच्छेद का वाक्य-विश्लेषण करो और उसमें से पद-व्याख्या करो—

इसी, जैसी, अब, ऐसा, फुर्ती।

संकेत —

१—ग्रीष्म का भौगोलिक कारण बताकर उसका फल बतलाना।

२—ग्रीष्म में सूर्यताप की वृद्धि का हेतु बताना।

३—इस ऋतु मे दिन के बड़े और रात के छोटे होने का कारण बताना।

---

(२६) आत्मनिर्भरता

आत्मनिर्भरता (अपने भरासे पर रहना) ऐसा श्रेष्ठ गुण है कि जिसके न होने से पुरुष में पौरुष का अभाव कहना अनुचित नहीं मालूम होता। जिनको अपने भरोसे का बल है वे जहाँ होंगे जल मे तोंबो के समान सबके ऊपर रहेगे। शारीरिक बल, चतुरंगिणी सेना का बल, प्रभुता का बल, ऊँचे कुल में पैदा होने का बल, मित्रता का बल, मंत्र-तंत्र का बल इत्यादि जितने बल हैं, निज बाहु-बल के आगे सब क्षीण बल हैं, वरन् आत्मनिर्भरता की बुनियाद या बाहु-बल बे-तरह के बल को सहारा देनेवाला और उभारनेवाला है।

यूरोप के देशों की जो इतनी उन्नति है तथा अमेरिका, जापान आदि जो इस समय मनुष्य-जाति के सिरताज हो रहे हैं इसका यही कारण है कि उन देशों में लोग अपने भरोसे पर रहना या कोई काम करना अच्छी तरह जानते हैं। हिंदुस्तान का जो सत्य-नाश है इसका यही कारण है कि यहां के लोग अपने भरोसे पर रहना भूल ही गए हैं। इसी से सेवकाई करना यहाँ के लोगों से जैसी खूबसूरती के साथ बन पड़ता है वैसा स्वामित्व नहीं। अपने भरोसे पर रहना जब हमारा गुण ही नहीं तब क्योंकर संभव है कि हमारे मे प्रभुत्व-शक्ति को अवकाश मिले।

निरी क़िस्मत और भाग्य पर वे ही लोग रहते हैं जो आलसी हैं। किसी ने अच्छा कहा है—"दैव दैव आलसी पुकारा"।

ईश्वर भी सानुकूल और सहायक उन्हीं का होता है जो अपनी सहायता अपने आप कर सकते हैं[1]। अपने आप अपनी सहायता करने की वासना आदमी में सच्ची तरक्क़ी की बुनियाद है। अनेक सुप्रसिद्ध सत्पुरुषों की जीवनी इसका उदाहरण तो हुई है वरन् प्रत्येक देश या जाति के लोगों में बल और ओज तथा गौरव और महत्त्व के आने का आत्मनिर्भरता सच्चा द्वार है।

बहुधा देखने में आता है कि किसी काम के करने में बाहरी सहायता इतनी लाभ नहीं पहुँचा सकती जितनी आत्म-निर्भरता। समाज के बंधन में भी देखिए बहुत तरह के संशोधन सरकारी क़ानूनों के द्वारा वैसे नहीं हो सकते जैसे समाज के एक एक मनुष्य का अलग अलग अपना संशोधन अपने आप करने से हो सकता है।

सच पूछो तो जाति या क़ौम भी सुधरे हुए ऐसे एक एक व्यक्ति की समष्टि है। समाज या जाति के एक एक आदमी यदि अलग अलग अपने को ही सुधारें तो जाति की जाति या समाज का समाज सुधर जाय।

सभ्यता और है क्या? यही कि सभ्य जाति के एक एक मनुष्य आबाल-वृद्ध-वनिता सबों में सभ्यता के सब लक्षण पाए

१—"ईश सहायक तासु, जो, आप सहायक आप। पर सहाय को चाहिगो, कह 'रसाल' है पाप"॥ अँगरेज़ी की एक कहावत का अनुवाद।

जायँ। जिसमे आधे या तिहाई सभ्य हैं वही जाति अर्द्धशिक्षित कहलाती है। कौमी तरक्की भी अलग अलग एक एक आदमियों के परिश्रम, योग्यता, सुचाल और सौजन्य का मानों टाटल है[1]। उसी तरह कौम की तनज्जुली कौम के एक एक आदमी की सुस्ती, कमीनापन, नीच प्रकृति, स्वार्थपरता और भाँति भाँति की बुराइयों का ग्रैंड[2] टाटल है। इन्हीं गुणों और अवगुणों को जाति-धर्म के नाम से भी पुकारते हैं जैसा सिक्खों में वीरता और जंगली असभ्य जातियों में लुटेरापन।

जातीय गुणों या अवगुणों को गवर्मेंट कानून के द्वारा रोक दे या जड़-पेड़ से नेस्तनाबूद कर दे; परंतु वे किसी दूसरी शकल में न सिर्फ़ फिर से उभड़ आवेंगे वरन् पहले से भी ज़्यादा तरो-ताज़गी और सब्ज़ी की हालत में हो जायँगे। जब तक किसी जाति के हर एक व्यक्ति के चरित्र में आदि से मौलिक सुधार न किया जाय तब तक अव्वल दर्जे का देशानुराग और सर्वसाधारण के हित की वांछा सिर्फ़ कानून के अदल-बदलपन से या नये कानून जारी करने से ही नहीं पैदा हो सकती।

निश्चय हुआ कि देश की स्वतंत्रता की गहरी और मज़बूत नींव उस देश के एक एक आदमी के आत्मनिर्भरता आदि गुणों पर स्थित है। ऊँचे से ऊँचे दरजे की तालीम बिलकुल बेफ़ायदा है यदि हम अपने ही सहारे अपनी बेहतरी न कर

१—अँगरेज़ी—योग-फल, जोड़। २—ग्रैण्ड, बड़ा जोड़।

सकें। जान स्टुअर्ट मिल[१] का सिद्धांत है कि "राजा का भयानक से भयानक अत्याचार देश पर कभी कोई बुरा असर नहीं पैदा कर सकता जब तक उस देश के एक एक व्यक्ति में अपने सुधार की अटल वासना दृढ़ता के साथ है।"

पुराने लोगों से जो चूक और ग़लती बन पड़ी है उसी का नतीजा वर्त्तमान समय में हम लोग भुगत रहे हैं। उसी को चाहे जिस नाम से पुकारिए यथा "जातीयता का भाव जाता रहा", "एका नहीं है", "आपस की हमदर्दी नहीं है" इत्यादि। तब पुराने क्रम को अच्छा मानना और उस पर श्रद्धा जमाए रहना हम क्योंकर अपने लिये उपकारी और उत्तम मानें। हम तो इसे निरी चंडूख़ाने की गप समझते हैं कि हमारा धर्म हमें आगे नहीं बढ़ने देता, अथवा विदेशी राज से शासित है इसी से हम तरक्क़ी नहीं कर सकते। वास्तव में सच पूछो तो आत्मनिर्भरता अर्थात् अपनी सहायता अपने आप करने का भाव हमारे बीच हुई नहीं। हमारी यह सब वर्तमान दुर्गति उसी का परिणाम है। बुद्धिमानों का अनुभव हमे यही कहता है कि मनुष्य में पूर्णता विद्या से नहीं वरन् काम से होती है। प्रसिद्ध पुरुषों की जीवनियों के पढ़ने से नहीं वरन् उन प्रसिद्ध पुरुषार्थी पुरुषों के चरित्रों का अनुकरण करने से मनुष्य मे पूर्णता आती है। यूरोप की सभ्यता जो आज-कल हमारे लिये उन्नति की प्रत्येक बात में उदाहरण-

१—अँगरेज़ विद्वान् दार्शनिक एवं नैयायिक था।

स्वरूप मानी जाती है एक दिन या एक आदमी के काम का परिणाम नहीं है।

जब कई पुश्त तक देश का देश ऊँचे काम, ऊँचे ख्याल और ऊँची वासनाओ की ओर प्रबलचित्त रहा तब वे इस अवस्था को पहुँचे हैं। वहाँ के हर एक फ़िरक़े जातीय वर्ण के लोग धैर्य के साथ धुन बाँध के बराबर अपनी अपनी तरक़्क़ी मे लगे हैं। नीचे से नीचे दरजे के मनुष्य किसान, कुली, कारीगर आदि और ऊँचे से ऊँचे क़ौमी दरजेवाले कवि, दार्शनिक, राजनीतिज्ञ सबने मिल कर ऊँचे तरक्की को इस दरजे तक पहुँचाया है।

एक ने एक बात को आरंभ कर उसका ढाँचा खड़ा कर दिया, दूसरे ने उसी ढाँचे पर साबित-क़दम रह एक दरजा और बढ़ाया। इसी तरह क्रम क्रम से कई पीढ़ी के उपरांत वह बात जिसका केवल ढाँचामात्र पड़ा था पूर्णता और सिद्धि की अवस्था तक पहुँच गई। ये अनेक शिल्प और विज्ञान, जिनकी दुनिया भर मे धूम मची है इसी तरह शुरू किए गए थे और ढाँचा छोड़नेवाले पूर्व-पुरुष अपनी भाग्यवान भावी संतान को उस शिल्प-कौशल और विज्ञान का बडी भारी मीरास[1] या बपौती का उत्तराधिकारी बना गए।

आत्मनिर्भरता या "अपने आप अपनी सहायता" के संबंध में जो शिक्षा हमे खेतिहर, दूकानदार, बढ़ई, लोहार आदि

१—फारसी—मौरूसी।

कारीगरों से मिलती है उसके मुकाबिले में स्कूल और कालिजों की शिक्षा कुछ नहीं है और यह शिक्षा हमें पुस्तकों या किताबों से नहीं मिलती; वरन् एक एक मनुष्य के चरित्र, आत्मदमन, दृढ़ता, धैर्य, परिश्रम, स्थिर अध्यवसाय पर दृष्टि रखने से मिलती है। इन सब गुणों से हमारे जीवन की सफलता है। ये गुण मनुष्य-जाति की उन्नति के छोर हैं और हमें जन्म ले, क्या करना चाहिए इसके सारांश हैं।

बहुतेरे सत्पुरुषों के जीवन-चरित्र धर्म्मग्रंथ के समान हैं जिनके पढ़ने से हमें कुछ न कुछ उपदेश जरूर मिलता है। बड़प्पन किसी जातिविशेष या खास दरजे के आदमियों के हिस्से मे नहीं पड़ा। जो कोई बड़ा काम करे या जिससे सर्व-साधारण का उपकार हो वही बड़े लोगों की कोटि में आ सकता है। वह चाहे ग़रीब से ग़रीब या छोटे से छोटे दर्जे का क्यों न हो बड़े से बड़ा है। वह मनुष्य के तन मे साक्षात् देवता है।

हमारे यहाँ अवतारी ऐसे ही लोग हो गये हैं। सबेरे उठ जिनका नाम ले लेने से दिन भर के लिये मंगल की गारंटी[१] समझी जाती है, ऐसे महामहिमशाली जिस कुल मे जन्मते हैं वह कुल उजागर और पुनीत हो जाता है। ऐसों ही की जननी वीरप्रसू कही जाती है। पुरुषसिंह ऐसा एक पुत्र अच्छा, गीदड़ों की ख़ासियतवाले सौ पुत्र भी किस काम के।

१—अँगरेज़ी—निश्चय, ज़िम्मा।

हिंदुस्तान को हमारी बिगड़ी-गिरी क़ौम में सिंह का जन्मना सर्वथा असंभव-सा प्रतीत होता है और न हम लोगों के ऐसे पुण्य काम ही हैं कि हमारे बीच सब सिंह ही सिंह जन्मे।

समाज में ऐसे ऐसे कुसंस्कार और निंदित रीतियाँ चल पड़ी हैं कि आत्मनिर्भरता पास तक नहीं फटकने पाती। बहुत तरह के समाज-बंधन तथा खान-पान आदि की क़ैद जो हमारे पीछे लगा दी गई है उन सबका यही तो परिणाम हुआ है कि आज़ादी जिस पर आत्मनिर्भरता या किसी दूसरे पौरुषेय गुण की लंबी-चौड़ी इमारत खड़ी हो सकती है, शुरू ही से नहीं आने पाती।

जब कि यूरोप के भिन्न भिन्न देशों मे माँ-बाप अपने लड़कों को तालीम देने के साथ ही साथ अपने भरोसे पर जिन्दगी की किश्ती को किस तरह पर खे ले जाना चाहिए यह लड़कपन से सिखाते हैं, तब यहाँ दुधमुँहे बालक-बालिकाओं का ब्याह कर स्वयं अपना भरण-पोषण तथा अन्य समस्त पौरुषेय गुणों की जड़ पर कुल्हाड़ा चलाने का प्रयत्न किया जाता है।

यूरोप के देशों मे पिता पुत्र को शक्ति भर उत्तम से उत्तम शिक्षा दे उसे जीवन-संग्राम के लिये तैयार कर देता है जिसमे वह अपने आप निर्वाह कर सके। वहाँ के माँ-बाप हम लोगों के माँ-बाप की तरह अपने पुत्र के मित्रमुख शत्रु नहीं हैं कि बिना सोचे-समझे लड़कपन से चक्की का पाट गले मे बाँध उस बेचारे को सब तरह पर हीन-दीन और लाचार कर

डालें और आप भी चिता पर पहुँचने तक लड़कों की फिकिर से सुचित न रहे। अस्तु हमारे में आत्मनिर्भरता आने ही नहीं पाती। इसी का यह फल है कि हम नया कुआँ खोद नया स्वच्छ पानी पीना जानते ही नहीं।

हमारे देश की कुल आबादी के दस हिस्सों में आठ हिस्सा ऐसा है जो केवल बाप-दादो की कमाई या परंपरा-प्राप्त जीविका अथवा वृद्धि से निर्वाह करता है। सौ में एक ऐसे मिलेंगे जो अपने निज बाहु-बल और पुरुषार्थ के भरोसे हैं सो भी उनके सब पुरुषार्थ, करतूत या सपूती का निचोड़ केवल इतना ही है जैसा किसी कवि ने कहा है[१]—

"सफल जीवन उसी का है जिसने अन्न-वस्त्र से अपने लड़के और स्त्री को प्रसन्न कर रखा है। इतना जिसने किया वह पक्का सपूत और पुरुषार्थी है"[२]।

आत्म-निर्भरता मे दृढ़, अपने कूवते-बाज़ू पर भरोसा रखनेवाला, पुष्टबल भाग्यवान् एक संतान अच्छी, कूकर-शूकर-से निकम्मे, रग रग मे दासभाव से पूर्ण, परभाग्योपजीवी, दस किस काम की ?

आदमी के लिए आज़ादी एक बेशकीमत मोती है। वह आज़ादी तब ही हासिल हो सकती है जब हम अनेक तरह की

१—"अन्नपानजिता दारा सफलं तस्य जीवनम्।"

२—सुखी करत सुत-तियहि जो, दै दै भोजन-पान।
ताको जग-जीवन सुफल सुकवि 'रसाल' "बखान"॥

फिकिर और चिंता से निर्द्वंद हो और हमारी तबीअत में आत्म-निर्भरता ने दख़ल कर लिया हो। इस दशा में बड़ी से बड़ी चिंता और फिकिर हमे उतनी असह्य न मालूम होगी कि वह हमारी स्वच्छंदता को जड़ से उखाड़ सके। किसी वस्तु का जब बीज बना रहता है तो उसको फिर बढ़ा लेना सहज है।

किसी का मत है कि मुल्क की तरक्क़ी औरतों की तालीम से होगी, कोई कहता है विधवा-विवाह होने से भलाई है, कोई कहता है खाने-पीने की क़ैद उठा दी जाय तो हिंदू लोग स्वर्ग पहुँच इंद्र का आसन छीन लें, कोई कहता है विलायत जाने से तरक्क़ी होगी, कोई कहता है फ़ज़ूलख़र्ची कम कर दी जाय तो मुल्क अभी तरक्क़ी की सीढ़ी पर लपक के चढ़ जाय। हम कहते हैं इन सब बातों से कुछ न होगा जब तक हमारा पर-निर्भरता-रूपी कोढ़ साफ़ न होगा। हम जानते हैं हमारा यह रोना-झीखना केवल अरण्य-रुदन-मात्र है फिर भी गला फाड़ फाड़ चिल्लाते रहेंगे। कदाचित् किसी की तबीअत पर कुछ असर पैदा हो जाय और आत्म-निर्भरता ऐसे श्रेष्ठ गुण को हम लोगों के भी बीच प्रकट होने का अवकाश मिले।

(हिन्दीप्रदीप से) —प० बालकृष्ण भट्ट

पाठ-सहायक

चतुरंगिणी—रथ, हाथी, घोड़े और पैदल ये सेना के चार अंग हैं, इनसे युक्त सेना चतुरंगिणी कहाती है। समष्टि—मिली हुई एक वस्तु; तरोताज़गी—तरी + ताज़गी। नेस्तनाबूद—नष्ट, लोलुप

(मूल से गुणवाचक)—जड़ से, साबितकदम—दृढ़, उसी पथ पर दृढ, अध्यवसाय—श्रम, उद्योग, महामहिमशाली—महापुरुष, कूवते-बाजू—बाहुबल।

अभ्यास

१ आत्मनिर्भरता से क्या तात्पर्य है ? इसकी क्या आवश्यकता है।

२—इस पाठ से उर्दू-शब्द एवं मुहावरे चुनो और उनके लिये उपयुक्त हिंदी-शब्द बताओ।

३—भावार्थ लिखो और अपने वाक्यों में प्रयुक्त करो—

तरक्की की बुनियाद है, सच्चा द्वार है, जड-पेड़ से धुन बाँध के, धूम मची है, जड़ पर कुल्हाड़ा चलाना, चक्की का पाट गले में बाँध, चडूखाने की गप।

४—कैसे शब्द हैं, विशेषताएँ प्रकट कर व्याख्या करो—

अरण्य-रुदन, परभाग्योपजीवी, दुधमुहे, बपौती, अदल-बदलपन।

५—उपयोगी सिद्धांत चुनकर लिखो और सूक्ष्म टिप्पणियाँ लगाओ—

सबों, सब्ज़ी, हमारे में, क्योंकर, हुई।

६—इसी विषय पर एक पत्र अपने छोटे भाई को लिखो।

७—किस प्रकार की संज्ञाएँ हैं, कैसे बनी हैं नियम लिखो—

दार्शनिक, कौशल, बेहतरी, लुटेरापन, महत्त्व, चतुरंगिणी, बपौती, पौरुषेय।

८—नए प्रत्यय आदि लगाकर संज्ञाएँ बनाओ और प्रयुक्त करो—

भुगतना, उभरना, जगली, सुधरना, नया, ऊँचा।

९—प्रेरणार्थक क्रियाएँ बनाकर प्रयुक्त करो—

मानना, बढना, छोड़ना, पहुँचना।

१०—सविग्रह समास बताओ—

उदाहरणस्वरूप, उत्तराधिकारी, महामहिमशाली, परभाग्योपजीवी।

११—इस पाठ से चमत्कारपूर्ण वाक्य चुनो और उनकी व्याख्या करो।

संकेत—

१—इँगलैंड और अमेरिका आदि की उन्नति पर एक व्याख्यान देकर समझाना।

२—इस पाठ की भाषा की वर्तमान भाषा से तुलना करना और यथावश्यकता रूपांतर कराना।

---

(२७) वर्तमान हिंदी-साहित्य के गुण-दोष

वर्तमान साहित्य प्राचीन काव्य से तीन परम प्रधान बातों में भिन्न है, अर्थात् खड़ी बोली के प्रचार, गद्य-गौरव और लोकोपयोगी विषय-समाचार में। ये तीनों बातें वर्तमान साहित्य को खूब ही गौरवान्वित करती हैं। लोकोपकारी विषयों को आदर देनेवाली नवीन प्रथा का स्थिर हो जाना तो एक बहुत ही बड़ा उत्साहप्रद कार्य है। जैसी देश-दशा होगी, वैसी ही कविता भी स्वभावतः होगी। प्राचीन काल में जीवन-होड़ की निर्बलता से लोकोपकारी विषयों की ओर हमारे कविजनों का विशेषतया ध्यान नहीं गया, यद्यपि यह सदैव ध्यान में रखना चाहिए कि अन्य बातों में उन्होंने साहित्य-गरिमा पूर्णता को पहुँचा दी।

इस समय उन्नायक दल के लेखकों की रचनायें विशेपतया इन्हीं विषयों से भरी रहती हैं, यद्यपि व्रजभाषा के अनेकानेक कविजन अब तक प्राचीन प्रथा पर ही चलते हैं। इस समय भी प्राचीन प्रथानुयायी कवियों की गणना अधिक है, परंतु उनकी संख्या दिनोंदिन घटती जाती है और नवीन प्रथानुयायी कवियों की गणना अच्छी शीघ्रता से बढ़ रही है। इन बातों पर विचार करने से चित्त परम प्रसन्न होता है।

गद्य काव्य से तो व्रजभाषा का प्रयोग अब बिलकुल उठ गया है और पद्य से भी उठता ही-सा जाता है। प्राचीन समय में कवियों ने भक्ति, हिंदूपन आदि पर समय समय पर ध्यान दिया और इन विषयों पर कवितायें भी प्रचुरता से बनीं, विशेषतया भक्ति-पक्ष पर। फिर भी उस समय जातीयता के अभाव ने भारतवर्ष भर को एक समझानेवाले विचारों को न उठने दिया और इसलिये देश-हित-संबंधी साहित्य का चलन बिलकुल न हुआ।

वर्तमान गद्य-महिमा ने लोकोपयोगी विषयों की अच्छी उन्नति की है और दिनोदिन ऐसे ग्रंथ बनते एवं अनुवादित होते जाते हैं। इन कारणों से पाठकों को भी उन्नत विषयों के जानने का सुभीता हो गया है। आजकल लेखक-बाहुल्य से उपयोगी ग्रंथ-बाहुल्य में भी अच्छी वृद्धि हुई है, जिससे भाषा-ग्रंथ-भंडार-भरण बहुत उत्तमता से हो रहा है और हुआ भी है। इन बातों से विविध उपयोगी विषयों का भाषा-भण्डार इतना भरा जितना कि इससे तिगुने समय तक किसी काल में नहीं हुआ।

समाचार-पत्रों एवं पत्रिकाओं की भी अच्छी वृद्धि हुई है। इनसे केवल हिंदी जाननेवालों को विविध भाँति के समाचारों एवं विचारों के जानने का अच्छा सुभीता मिला है। हाँ अभी इनमें एक भारी दोष यह है कि अधिकतर पत्रों के संपादक प्राचीन विचाराश्रयी और बहुधा पूरे पुराने लकीर के फ़कीर

होते हैं। इन लोगों के कारण बहुतेरे लोग पुराने अशुद्ध विचार से हटने के स्थान पर और भी दृढ़ हो जाते हैं। यह दोष पत्र-प्रथा को तो नहीं, वरन् आजकल के हमारे मानसिक अधःपतन को ही प्रकट करता है।

भाषा ने उन्नति करते करते अब अच्छा रूप ग्रहण कर लिया है, परंतु फिर भी उसमें एक दोष यह है कि अब तक उन्नत भाषा के लिखने में लोग संस्कृत-भाषा के कठिन शब्दों का लिखना ही अलम् समझते हैं, और ऐसे ग्रंथों के लिखने का प्रयत्न नहीं करते जैसे अँगरेज़ी के बड़े-बड़े लेखक लिखते हैं और बहुत दिनों से लिखते आए हैं। अब तक गद्य में दर्शन, रसायन, विज्ञान, कारबार आदि के ग्रंथ विशेषता से बने हैं, परंतु साहित्य-संबंधी ऊँचे गद्य-ग्रंथ बहुत ही कम देख पड़ते हैं। गद्य में अलंकारों, रसों, प्रबंधध्वनियों तथा अन्यान्य काव्यांगों को लाकर उसे उत्कृष्ट एवं कठिन बनाने का अभी पूरा क्या प्रायः कुछ भी प्रयत्न नहीं हुआ है। आशा है कि इस ओर भी हमारे लेखकगण ध्यान देंगे।

अब तक हमारे लेखकों ने भाषा के गूढ़ीकरण में संस्कृता-श्रय का लेना ही आवश्यक जान रक्खा है, परंतु इस बात पर सदैव ध्यान रखना चाहिए कि अन्य भाषाश्रय किसी भाषा को बड़ा नहीं बना सकता। संस्कृत और भाषा में बहुत दिनों से संबंध अवश्य चला आता है, परंतु इसकी वृद्धि भाषा-गौरव वर्द्धिनी कदापि नहीं हो सकती। जैसे मनुष्यों के लिये

आत्मनिर्भरता एक आवश्यक गुण है, वैसे ही वह भाषाओं के लिये भी है। किंतु आजकल के लेखक इस अनुपम गुण को भूल कर भाषा को संस्कृत की सेवकिनी बनाना चाहते हैं।

हमारी भाषा की श्रुतिमधुरता उसकी एक प्रधान महिमा है। संस्कृत में मिलित वर्णों के आधिक्य से पुराने आचार्यों ने श्रुति-कटु दोष बहुत कम माना है, परंतु हमारी भाषा में प्राचीन काल से आचार्यों एवं कवियों ने मिलित वर्णों को छंदों मे बहुत ही कम आने दिया है और बहुत-से ऐसे शब्दों को श्रुति-कटु माना है। इसी कारण प्राचीन रचनाओं में कर्कशता का ऐसा अभाव है कि अन्य भाषा-प्रेमी लोग यदि हमारी भाषा की निंदा भी करते हैं तो भी उसके माधुर्य की प्रशंसा अवश्य कर देते हैं।

खड़ी बोली के कवियों ने आजकल इस अनुपम गुण का प्रायः बिलकुल ही विस्मरण कर दिया है। एक तो खड़ी बोली में बिना ख़ास प्रयत्न के श्रुतिकटु आ ही जाता है, और दूसरे संस्कृत-शब्दानुरागी होने से ये लोग मिलित वर्णों की ओर भी भरमार रखते हैं, जिससे खड़ी बोली के छंदों से श्रुति-माधुर्य का लोप हुआ जाता है।

वर्तमान कविगण प्रायः प्राचीन आचार्यों के ग्रंथों का अध्ययन किए बिना ही साहित्य-रचना करने लगते हैं और कुछ लोगों में अहंकार की मात्रा ऐसी बढ़ी हुई है कि वे अपनी शिथिलातिशिथिल रचनाओं के भी आगे नामी आचार्यों

तक के ग्रंथों को पुराने, समय-प्रतिकूल और भदेसिल समझते हैं। आजकल की पद्य-रचनाओं में शाखाचंक्रमण तथा सुप्रबंधाभाव के बड़े ही विकट दूषण आ जाते हैं।

शाखाचंक्रमण कवियों का एक शाखा से दूसरी शाखाओं पर बार-बार कूदने के समान रचना करने को कहते हैं। किसी भाव को लेकर उसे कुछ दूर तक चलाना चाहिए और उसके संबंधी भावों एवं उपभावों को उसके समीप स्थान देना चाहिए, जिससे रस की पूर्ति हो, न यह कि एक भाव का कथन-मात्र करके दूसरे पर कूद जाना। यदि सूर्य की किरणों का वर्णन उठावे तो उनकी मालाओं, संख्या-बाहुल्य, तेज, नेत्रों के चका-चौंध करने का बल, कमल खिलाना, संसार में उष्णता के ह्रास या वृद्धि से ऋतुओं का बदलना, फलों का पकाना, रसों का उत्पन्न करना, संसार की जीवन-वृद्धि करना आदि अनेकानेक गुणों में से कुछ भी कहे बिना दूसरे भाव पर चट से कूद जाना साहित्य-शक्तिहीनता का ही प्रमाण देगा।

सुप्रबंध गुण वर्णन-पूर्णता में ही आता है। जिस प्रसंग को उठावे उसका सांगोपांग कथन करना कविता-शक्ति का एक अच्छा प्रदर्शक है। यदि किसी में बहुत ऊँचे-ऊँचे विचारों के लाने का बल न भी हो तो केवल सुप्रबंध से वह सुकवि माना जायगा। आजकल बहुधा लोग न तो ऊँचे विचार ही लाते हैं और न सुप्रबंध की ओर ही कुछ ध्यान देते हैं। इसका मुख्य कारण आचार्यों का निरादर एवं साहित्य-रीति की

पठन-पाठन-प्रणाली का तिरस्कार है। लोगों को भाषा-साहित्य के विषय में कुछ जानकर तब छंद-रचना आरंभ करनी चाहिए।

बहुत-से लोग समझते हैं कि संस्कृत-काव्य-प्रणाली के जानने से ही वे भाषा-साहित्य के पंडित कहलाने के योग्य हो जाते हैं। यह भारी भूल है। यदि हमारे आचार्यों के रीत-ग्रंथो का अध्ययन किया जाय तो विदित होगा कि उन्होंने कितना श्रम कर चारु चातुर्य का फल अपनी रीति-रचनाओं में रक्खा है और संस्कृत-रीतियों से भाषा में कितना भेद है।

हमारे यहाँ प्राचीन कवियों ने अधिकतर दशाओं में धार्मिक कथाओं का ही कहना उचित माना था। फल यह हुआ कि मेवाड़, जोधपुर, बूंदी, सिरोही, बुंदेलखंड, रीवाँ, दक्षिण आदि में सैकड़ों महाराज एवं महापुरुष हो गए हैं, जिनके गुण-कथा से कवि-शक्ति-स्फुरण एवं जातीयता-वर्द्धन हो सकता है, परंतु इनके वर्णन न तो प्राचीन प्रथा के ही कवियों ने किए और न नवीन प्रणाली के ही लोग करते हैं। हमारे यहाँ पद्य-संबंधी विषय-बाहुल्य और उसका अनुपयोग देखकर बड़ा शोक होता है।

आजकल गद्य-संबंधी साधारण से साधारण विषयों पर भी लेखकों का ध्यान रहता है, यहाँ तक कि सात-आठ सौ गद्य-लेखक आज वर्तमान हैं, परंतु पद्य-लेखकों की संख्या और उनके द्वारा सद्विषयों का सदुपयोग दोनों ही बड़ी हीनावस्था में हैं।

हमारे यहाँ महाकाव्यों का प्राय: अभाव-सा है। प्राचीन कवियों ने तो ऐसे ग्रंथ कुछ कुछ बनाये भी, परंतु वर्तमान समय में लोगों का ध्यान इस ओर है ही नहीं।

प्राचीन काल में तुकांतहीन छंदों की रचना बिलकुल नहीं हुई, परंतु वर्तमान समय में इस ओर रुचि देख पड़ती है। ऐसे छंदों की रचना बहुत लाभदायक और गौरव की बात है। आशा है कि भविष्य में इस विषय की उन्नति होगी।

हमारे यहाँ नाटक-विभाग ने तो अब तक समुचित क्या कुछ भी उन्नति नहीं की है। भारतेंदु जी ने इसको जन्मदान दिया, परंतु अभी तक इसकी कुछ भी उन्नति नहीं हुई है। आशा है कि कविजन इस ओर विशेषतया ध्यान देंगे; विशेषकर इस कारण से कि नाटकों के लिये उपयोगी विषय और अर्वाचीन कथायें प्रचुरता से प्रस्तुत हैं।

उपन्यास-विभाग की हमारी भाषा में बड़ी ही कमी है, और साथ ही साथ भरमार भी है। असंभव कथायें और अशिक्षा-प्रद असत्य घटनायें तो हमारे यहाँ सैकड़ों उपन्यासों में कही गई हैं, परंतु पाठ-योग्य उचित उपन्यासों की नितांत ऊनता है। इस ओर हमारे उपन्यास-लेखकों का अवश्य ध्यान देना चाहिए। हमारे हजारों महापुरुषों के चरित्र गाये जाने को पड़े हैं। उन पर ऐतिहासिक उपन्यासों के लिखने से वर्तमान असंभव कथाओं का कथन कहीं निकृष्टतर है। फिर प्रत्येक उपन्यास का कोई मुख्य भाग होना चाहिए। उसे हमारे किसी

प्रधान अवगुण के हटाने अथवा गुण-प्राप्ति का शिक्षा देने का प्रबंध करना चाहिए।

हमारे यहाँ समालोचना-विभाग की भी समुचित उन्नति होनी चाहिए। आजकल की बहुतेरी समालोचनायें ईर्ष्याद्वेषजन्य होती हैं। समालोचना लिखने के लिये आलोच्य विषय से सहृदयता आवश्यक है। इस गुण और अच्छे परिश्रम के अभाव में आलोचनायें ज्योतिः दान के स्थान पर अंधकार-वर्द्धन से भी बुरा काम करती हैं, क्योंकि वे कुछ न जाननेवाले को मिथ्या ज्ञान प्रदान करती हैं। कोई अज्ञ मिथ्याज्ञानाभिमानी से कहीं श्रेष्ठतर है। समालोचना-ग्रंथ भी अब तक बहुत ही कम बने हैं।

आजकल के गद्य-लेखकों के सबसे बुरे अवगुणों मे से चोरी, सीनाज़ोरी, परावलंबन, विचार-परतंत्रता, अनात्मनिर्भरता आदि हैं। प्राचीन प्रथा के लेखक तो पुरानी लकीर के फ़कीर हो रहे हैं और नवीन प्रणालीवाले पाश्चात्य नवीन और प्राचीन लेखकों के दास हैं। लेखकों में बहुत अधिक लोग यह भूल गए हैं कि उनके सिरों मे भी एक एक दिमाग़ है। प्राचीन प्रथानुयायी लोग सभी प्राचीन बातों को सिद्ध किया चाहते हैं और नवीन प्रणाली के अवलंबी प्रायः सभी प्राचीन मतों और लेखकों को प्राचीन अस्थि-पिंजर समझते और पश्चिम के संमुख अपने देश के पूर्वजों एवं भाइयों को नितांत मूर्ख मानते हैं।

ये दोनों बातें बिलकुल अशुद्ध हैं, ऐसा प्रकट है और सभी मानते हैं, यहाँ तक कि उपर्युक्त प्रकार के लेखक भी वचनद्वारा यही कहते और समझते हैं। वे इसी कथनानुसार चलते भी हैं, परंतु वास्तव में उनके आचरण उनको उपर्युक्त दो विभागों में से एक में डाल देते हैं। ये अपने आपको भूले हुए हैं, और यहाँ तक भूले हुए हैं कि पराये विचारों एवं सिद्धांतों को ख़ास अपने ही न केवल कहने, वरन् समझने लगे हैं। इस प्रचंड मानसिक रोग (स्वभाव) का निराकरण तभी हो सकता है जब मनुष्य अपने प्रत्येक मत के कारणों पर सदैव विचार रक्खे और समझता रहे कि उन कारणों में से उनके कितने हैं।

यदि कोई शेक्सपियर को तुलसीदास से भी श्रेष्ठतर बतलावे तो उसे समझना चाहिए कि उसमें उन दोनों के गुण-दोष समझने की पात्रता है या नहीं और उसने उनके समझने में पूरा श्रम भी किया है या नहीं? यदि इन दोनों प्रश्नों में से एक का भी उत्तर नहीं है तो उसे उपर्युक्त तुलनाजन्य ज्ञान को अपना मत न समझ कर पराये का समझना चाहिए।

हमारे यहाँ गद्य का प्रचार थोड़े ही दिनों से हुआ है, अतः अभी अनुवादों का बनना स्वाभाविक है। फिर भी अति सर्वत्र वर्ज्येत्[1] पर सदैव ध्यान रखना चाहिए।

हमारे बहुतेरे लेखक अनुवाद अथवा [illegible] के

1 "अति वर्जित सर्वत्र"—स०

अतिरिक्त और कुछ लिखते ही नहीं और जिस ग्रंथ को वे स्वतंत्र कहते हैं, प्रायः उसमे भी औरों से चोरी और सीना-ज़ोरी निकल आती है।

सारांश यह है कि आजकल गद्य की उन्नति तो हुई है, परंतु समुचित नहीं, नाटक-विभाग अभी हीनावस्था में है, हाँ बढ़ता हुआ देख पड़ता है; पद्य की अवनति है और लेखकों मे प्राचीन भारतीय अथवा नवीन पाश्चात्य प्रणालियों के अनुसरण मे अंधपरंपरानुकरण का भारी दोष है।

—"मिश्रबंधु"

पाठ-सहायक

उन्नायक—(उत् + नायक)—उन्नतिकारी, दिनोंदिन—प्रतिदिन। इसी प्रकार रातोरात। ककशता—कटुता, सांगोपांग—(स-सहित + अंग-उपांग) संपूर्ण, स्फुरण—फूटना, निकलना, तुक—कविता के चरणांत वर्णों का साम्य, प्रचुरता—अधिकता, ईर्ष्याद्वेष-जन्य—ईर्ष्या-द्वेष से उत्पन्न, इसी प्रकार 'प्रतिभाजन्य' आदि शब्द रचो। पात्रता—क्षमता, सामर्थ्य, अंधपरंपरानुकरण—अंधे होकर परंपरा की नक़ल करना।

अभ्यास

१—आजकल के लेखकों तथा कवियों की क्या दशा है?

२—साहित्य के किन किन अंगों की कैसी दशा है?

३—साहित्य के किस किस क्षेत्र में क्या उन्नति की जा सकती है?

४—पद्य-साहित्य की क्या दशा है? तुम्हारी क्या राय है?

५—खड़ी बोली-काव्य के संबंध में क्या कहा गया है और वह कहाँ तक ठीक है?

६—भावार्थ लिखो और प्रयोग करो—

शास्त्राचंक्रमण, अंधपरंपरा, विचार-परतन्त्रता, शक्ति, स्फुरण, श्रुति-माधुर्य ।

७—सविग्रह समास लिखो, और यथावश्यकता संधि-विग्रह करो—

सांगोपांग, भाषा-ग्रंथ-भंडार-भरण, शिथिलातिशिथिल, कवि रुचि स्फुरण, उन्नायकदल, दिनोंदिन ।

८—विशेषतायें प्रकट कर पर्यायवाची शब्द लिखो—

सुभीता, भदेसिल, सेवकिनी, सीनाज़ोरी, दिनोंदिन ।

९—इस पाठ से साहित्य-रचना से संबंध रखनेवाले उपयोगी सिद्धांत या नियम निकालो ।

१०—वर्तमान लेखकों और कवियों के किन दोषों की ओर संकेत किया गया है ?

संकेत—

१—भारतेंदु बाबू का सूक्ष्म परिचय देना ।

२—गद्य-विकाश पर प्रकाश डालना ।

३—साहित्योन्नति पर प्रकाश डालना ।

(२८) सूर-सुधा

(१)

चरन कमल बंदौ हरिराई ।
जाको कृपा पंगु गिरि लंघै, अंधे कौ सब कछु दरसाई ॥
बहिरो सुनै, मूक पुनि बोलै, रंक चले सिर छत्र धराई ।
'सूरदास' स्वामी करुनामय बार बार बंदौं तेहि पाई ॥

(२)

मो-सम कौन कुटिल-खल-कामी ।
जिन तनु दियो ताहि बिसरायौ ऐसो नौनहरामी ॥
भरि भरि उदर विषय को धावौं जैसे सूकर ग्रामी ।
हरि-जन छाँड़ि हरी-विमुखन की निसि-दिन करत गुलामी ॥
पापी कौन बड़ो है मोतैं सब पतितन में नामी ।
'सूर' पतित को ठौर कहाँ है सुनिए श्रीपति स्वामी ॥

(३)

तुम मेरी राखौ लाज हरी ।
तुम जानत सब, अंतरजामी ! करनी कछु न करी ॥
औगुन मोतैं बिसरत नाहीं पल छिन घरी घरी ।

१—"मूक होइ बाचाल, पंगु चढ़इ गिरि-वर गहन ।"
—तुलसी-रामायण

सब प्रपंच की पोट बाँधि करि अपने सीस धरी॥
दारा, सुत, धन,-मोह लिए हौं सुधि बुधि, सब बिसरी।
'सूर' पतित को वेगि उधारो अब मेरी नाव भरी॥

(४)

तजौ मन हरि-विमुखन को संग।
जिनके संग कुबुधि उपजति है परत भजन में भंग॥
कहा होत पय पान कराए विष नहि तजत भुजंग।
कागहि कहा कपूर चुगाए स्वान नहाए गंग॥
खर को कहा अरगजा लेपन मरकट भूषन अंग।
गज को कहा नहाए सरिता बहुरि धरै खहि अंग॥
पाहन पतित बान नहिं बेधत रीतो करत निखंग।
'सूरदास' खल, कारो कामरि चढ़ै न दूजो रंग॥

(५)

आजु हौं एक एक करि टरिहौं।
कै हमहीं, कै तुमहीं माधव अपुन भरोसे लरिहौं॥
हौं तो पतित सात पीढ़िन कौ पतितै ह्वै निस्तरिहौं।
अब हौं उघरि नचन चाहत हौं तुम्हैं बिरद बिनु करिहौं॥
कत आपनि परतीति नसावत हौं पायो-हरि हीरा।
'सूर' पतित तब ही लै उठि है जब हँसि दैहौ बीरा॥

(६)

अब की राखि लेहु भगवान्।
हम अनाथ बैठे द्रुम-डरिया पारधि साँधे बान॥

याकैं डर भाज्यौ चाहत हौं ऊपर ढुक्यौ सचान।
दुहूँ भाँति दुख भयौ आनि यह कौन उबारै प्रान॥
सुमिरत ही अहि डस्यौ पारधी सर छूटै संधान।
'सूरदास' सर लग्यौ सचानहिं जय जय कृपानिधान॥

(७)

अब हौं नाच्यौ बहुत गोपाल।
काम-क्रोध कौ पहिरि चोलना[१] कंठ विषय की माल॥
महा मोह के नूपुर बाजत निंदा सब्द रसाल।
भरम भरो मन भयो पखावज[२] चलत कुसंगति चाल॥
तृसना नाद करति घट-भीतर नाना विधि दै ताल।
माया को कटि फेंटा बाँध्यो लोभ तिलक दियौ भाल॥
कोटिक कला काछि, दिखराई जल-थल, सुधि नहिं काल।
'सूरदास' की सबै अविद्या दूरि करहु नंदलाल॥

(८)

ऐसो कब करिहौ गोपाल।
मनसा-नाथ मनोरथ-दाता हौ प्रभु दीनदयाल॥
चित्त निरंतर चरनन-अनुरत रसना चरित रसाल।
लोचन सजल प्रेम-पुलकित तन कर कंजनि-दल-माल॥
ऐसें रहत, लिखै छिनु छिनु जम अपनौ जायो जाल।
'सूर' सुजस-रागी जन डारत मन सुनि जातना कराल॥

१—एक वस्त्र, अचला। २—एक बाजा।

(९)

कहावत ऐसे त्यागी-दानि।
चारि पदारथ दये सुदामहिं अरु गुरु को सुत आनि॥
रावन के दस मस्तक छेदे सर-हति सारंगपानि।
बीभीषण को लंका दीनो पूरब की पहिचानि॥
मित्र सुदामा कियो अजाचक प्रीति पुरातन जानि।
'सूरदास' सों कहा निठुराई नैननि हू की हानि॥

(१०)

कितक दिन हरि-सुमिरन-बिनु खोए।
परनिंदा-रस में रसना के अपने परत डुबोए॥
तेल लगाय कियो रुचि मर्दन बस्त्रहिं मलि मलि धोए।
तिलक लगाय चले स्वामी बनि बिषयनि के मुख जोए॥
काल बली तें सब जग काँपत ब्रह्मादिक हू रोए।
'सूर' अधम की कहा कौन गति उदर भरे परि सोए॥

(११)

कीजै प्रभु अपने बिरद की लाज।
महापतित कबहूँ नहिं आयो नेकु तुम्हारे काज॥
माया सबल-धाम-धन-बनिता बाँध्यो हौं इहि साज।
देखत सुनत सबै जानत हौ तऊ न आयो बाज॥
कहियत पतित बहुत तुम तारे स्रवननि सुनी अवाज।
दई न जात खेवार उतराई चाहत चढ़न जहाज॥

लीजै पार उतारि 'सूर' को महाराज ब्रजराज।
नई न करन कहत प्रभु तुम सौं सदा गरीब-निवाज॥

(१२)

जैसेहि राखौ तैसेहि रैहौं।
जानत हौ दुख-सुख सब जन कौ मुख करि कहा कहौं॥
कबहुँक भोजन देत कृपा करि कबहुँक भूख सहौं।
कबहुँक चढ़ौं तुरंग, महागज कबहुँक भार बहौं॥
कमल-नयन घनस्याम मनोहर अनुचर भयौ रहौं।
'सूरदास' प्रभु भगत कृपानिधि तुम्हरे चरन गहौं॥

(१३)

जो हम भले-बुरे तौ तेरे।
तुम्हैं हमारी लाज बड़ाई बिनती सुनि प्रभु मेरे॥
सब तजि तुव-सरनागत आयौ निजकर चरन गहे रे।
तुव प्रताप-बल बदत न काहू निडर भये घर चेरे॥
और देव सब रंक भिखारी त्यागे बहुत अनेरे।
'सूरदास' प्रभु तुम्हरी कृपा तैं पाये सुख जु घनेरे॥

(१४)

नाथ जू अब कै मोहिं उबारौ।
पतितन मैं बिख्यात पतित हौं पावन नाम तुम्हारौ॥
बड़े पतित नाहिन पासंगहु अजमिल कौ हौं जु बिचारौ।
भाजै नरक नाउँ मेरो सुनि जमहु देत हठि तारौ॥

छुद्र पतित तुम तारे श्रीपति अब न करौ जिय गारौ।
'सूरदास' साँचौ तब मानै जब होय मम निस्तारौ॥

(१५)

प्रभु तुम दीन के दुख-हरन।
स्याम-सुंदर मदन-मोहन बानि असरन-सरन॥
दूरि देखि सुदाम आवत धाय द्रुत पर्यौ चरन।
लक्ष्य सौ बहु लच्छि दीनी बानि अवढर-ढरन॥
बधे कौरव, भंजि सुरपति, बने गिरिवर-धरन।
'सूर' प्रभु की कृपा जापर भक्त-जन सब तरन॥

(१६)

प्रभु मेरे औगुन चित न धरौ।
समदरसी प्रभु नाम तिहारौ अपने पनहि करौ॥
एक लोहा पूजा में राखत एक घर बधिक परौ।
यह अंतर पारस नहिं जानत कंचन करत खरौ॥
एक नदिया एक नार कहावत मैलौ नीर भरौ।
जब मिलिकै दोउ एक बरन भये सुरसरि नाम परौ॥
एक जीव एक ब्रह्म कहावत 'सूरस्याम' झगरौ।
अब की बेर मोहिं पार उतारौ नहि पन जात टरौ॥

—सूरदास

पाठ-सहायक

राई—राजा, बंदौं—वंदना करता हूँ, पोट—गठरी, दारा—स्त्री, मैं—हौ,—हूँ, अरगजा—अंगराग, खहि—धूल, निखंग—तरकस, उघारि—नग्न, खुला, विरद—यश, पारधि—व्याध, रुचान—बाज़, सारंग—वैष्णव-धनुष, द्रुत—शीघ्र।

अभ्यास

१—सूरदास के पद क्यों अधिक प्रचलित हुए हैं ?

२—सूरदास मे किनके प्रति कैसी भक्ति थी ?

३—कौन-सा पद तुम्हें अधिक रुचिकर जान पड़ता है, और क्यों, उसी का भावार्थ लिखो।

४—किस पद की कौन-सी पंक्ति तुलसीदास के किस सोरठे से मिलती है ?

५—पदों में कौन कौन-से उर्दू-शब्द आए हैं, उनके स्थान पर हिंदी के उपयुक्त शब्द लिखो।

६—खड़ी बोली में रूपांतरित करो—

मो, दियौ, मोतैं, जिन, ताहि, धावौं।

७—पद नं० १५ का भावार्थ समझा कर लिखो। सूर किस प्रकार अपनी वहस करते हैं ?

८—याद करो—पद नं० १२, १४. १५. ४।

९—पद नं० ४ को खड़ी बोली मे रूपांतरित कर वाक्य-विग्रह करो।

१०—इन पदों में सूर की भक्ति का कैसा प्रतिबिम्ब तुम्हें दिखलाई पड़ता है ?

११—राम-भक्ति-संबंधी तुलसीदास के कुछ पद जो तुम्हें याद हों, सुनाकर समझाओ।

संकेत—

१—सूर के काव्य की आलोचनात्मक विवेचना कर समझाना।

२—सूर और तुलसी की तुलना करना-कराना।

३—सूर और तुलसी की भक्ति-धारा का भेद दिखाना।

परिशिष्ट

राजा शिवप्रसाद सी० एस० आइ०—जन्म सं० १८८०, मृ०-सं० १९५२

(राजाभोज का सपना)

आप काशी वासी थे वहाँ के आप प्रसिद्ध नागरिक और प्रतिष्ठित रईस थे। आप शिक्षा विभाग में इंस्पेक्टर तथा टेक्स्टबुक कमेटी के प्रधान सदस्य थे। आपको सरकार ने राजा और सी० एस० आई० की उपाधियाँ दीं। आपने हिंदी का स्तुत्य हित किया और इसे शिक्षा विभाग में स्थान दिलाया। आपने पाठशालाओं के लिये गुटका, इतिहासतिमिरनाशक आदि कई सुंदर पुस्तकें लिखीं और संगृहीत कीं। आपने कई मौलिक पुस्तकें भी लिखीं।

आपकी भाषा उर्दू या फारसी-शब्द-मिश्रित हिंदी होती थी। आपका सिद्धांत था कि भाषा ऐसी ही होनी चाहिए जिसे सब लोग साधारणतः बोलते और समझते हों। संस्कृत तथा फारसी के साँचे में हिंदी को अधिक ढालना वे हानिकर समझते थे। वे हिंदी और उर्दू को मिलाकर एक व्यापक भाषा चलाना चाहते थे।

उनकी शैली की विशेषताएँ हैं—वाग्विस्तार—एक बात को घुमा फिराकर विस्तृत रूप देते हुए कहना, नागरिकता का पूर्ण पुट देना, व्याकरणसंबंधी हिंदी के विशेष नियमों, विरामादि का पूर्ण पालन न करना, वरन् बराबर बोलचाल के रूप में लिखते जाना।

पंडित प्रतापनारायण मिश्र—जन्म-संवत् १९१३

(आप)

आपका जन्म आश्विनशुक्ला ९ को प० संकटाप्रसाद के घर वैजेगाँव ज़िला कानपुर में हुआ था। इसको सस्कृत, हिदा और ॲगरेज़ी की साधारण शिक्षा मिली थी। उर्दू फ़ारसी का भी इन्होंने कुछ अभ्यास किया था। ये अपने समय के अच्छे कवि और लेखक थे। ये अपनी हास्यमयी रचनाओं के लिये बड़े प्रसिद्ध थे। ये हिंदी-हिंदू-हिंदुस्तान के बड़े भक्त थे। इन्होंने कानपुर से "ब्राह्मण" नाम का एक पत्र सं० १९४० में निकाला था जो दस वर्ष तक चलता रहा। इन्होंने हठी हमीर (नाटक), दगल खंड (आल्हा), तृप्यताम्, भारतदुर्दशा, राजसिंह, इंगलागुर्लाय आदि ४० के लगभग पुस्तकों की रचना और अनुवाद किया। दुर्भाग्यवश ३८ वर्ष की ही अवस्था में दैव ने इन्हें संसार से उठा लिया।

भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र—जन्म-संवत् १९०७

(सत्यहरिश्चंद्र नाटक)

भारतेंदु जी का जन्म भाद्रपद की शुक्ला सप्तमी को, काशी में, हुआ था। ये प्रसिद्ध सेठ अमीचन्द के वशज थे। इनके पिता का नाम गोपालचन्द था जो अच्छे कवि और चालीस ग्रंथों के रचयिता थे। पिता के गुण पुत्र मे आए। छः वर्ष की अवस्था में ही ये कविता करने लगे थे। इन्होंने पेनीरीडिंग रूम, तदीय समाज आदि कई सस्थाओं की स्थापना की थी और कविवचनसुधा, हरिश्चंद्रिका और हरिश्चद्र मेगज़ीन नामक पत्र-पत्रिकाएँ निकाली थीं। स० १९२५ मे ये आनरेरी मजिस्ट्रेट बनाए गए। इन्होंने बीसियों नाटक लिखे और अनुवाद किए। इनकी कविता और उपाख्यान तथा निबंधों की कुछ गिनती नहीं। ये बड़े उदार और सौंदर्य-प्रिय व्यक्ति थे। व्यय मे सयम न रखने के कारण

इनको अंत में धन-संकट उठाना पड़ा। ये हिंदी-भाषा के बड़े प्रेमी थे। राजा शिवप्रसाद फ़ारसी मिली भाषा के पक्षपाती थे, इससे इन्होंने उनका विरोध किया। राजा शिवप्रसाद को सतारेहिंद ख़िताब मिलने पर हिंदी के समाचारपत्रों ने एकमत होकर उन्हें भारतेंदु की उपाधि दी जो सबको पसंद हुई।

पंडित बालकृष्ण भट्ट—जन्म-संवत् १९०१—

(आत्म-निर्भरता)

आपका जन्म प्रयाग में हुआ था। पहले इन्हें घर पर संस्कृत की शिक्षा मिली। फिर ये मिशन स्कूल में अँगरेज़ी पढने लगे। पादरी हेड मास्टर से वाद-विवाद हो जाने पर आपने स्कूल छोड़ दिया और फिर संस्कृत पढने लगे। इसी बीच में ये जमुना मिशन-स्कूल में अध्यापक हो गए। पर वहाँ भी अपनी धर्मनिष्ठा के कारण न निभी। नौकरी छोड़कर इन्होंने व्यापार में हाथ लगाया; पर वह भी इनकी प्रकृति के अनुकूल न निकला। अतएव ये साहित्य-सेवा में अपना सारा समय लगाने लगे और थोड़े ही समय में प्रसिद्ध लेखक हो गए। इस बीच में ये संस्कृत का गहन अध्ययन भी करते रहे। इसी समय प्रयाग में हिंदी-प्रवर्द्धिनी सभा की स्थापना हुई जिसने 'हिंदी-प्रदीप' मासिक पत्र निकालना शुरू किया। पं० बालकृष्ण भट्ट इस पत्र के संपादक बनाए गए। इन्हीं दिनों प्रेस ऐक्ट पास हुआ और लोगों ने 'प्रदीप' से नाता तोड़ दिया, पर ये बराबर कई वर्ष तक उसे चलाते रहे। पीछे आप कायस्थ-पाठशाला में संस्कृत के अध्यापक हो गए। आपके लेखों का संग्रह 'साहित्य-सुमन' के नाम से प्रकाशित हुआ है। रेल का विकट खेल, बाल विवाह नाटक सौ अजान एक सुजान, नूतन ब्रह्मचारी आदि कई अच्छे ग्रंथ इन्होंने लिखे।

मिश्रबंधु पं० श्यामबिहारी मिश्र, एम० ए०, रायबहादुर—

(वर्तमान हिंदी-साहित्य के गुण-दोष)

ये तीन भाई हैं—पं० गणेशबिहारी, पं० श्यामबिहारी और पं० शुकदेवबिहारी। तीनों भाई बड़े विद्वान् और महान् पुरुष हैं। ये कान्यकुब्ज कुलभूषण पत्यौंजा के दुबे (फिर मिश्र- विद्वत्ता के कारण इनके पूर्वज राममिश्र मिश्र माने गए) इटौंजा (लखनऊ) के निवासी हैं। ये 'महलवाले' कहलाते हैं। यहाँ हम केवल पं० श्यामबिहारी जी का ही हाल लिखते हैं—

पं० श्यामबिहारी मिश्र का जन्म भाद्र कृ० ४ सं० १९३० में हुआ। ७ वर्ष की अवस्था से पढना प्रारंभ कर सं० १९४८ में इंट्रेंस, सं० १९५२ में बी० ए० और १९५३ में एम० ए० उच्च कोटि की सफलता के साथ पास किए। सं० १९५४ में ये डिप्टी कलक्टर और १९६३ में डिप्टी सुपरिंटेंडेंट आफ पुलिस हुए। सं० १९६७ में छत्रपुर के दीवान हुए फिर १९७१ में आबकारी के असिस्टेंट कमिश्नर हुए। तीन बार क़ायम मुक़ाम सुपरिंटेंडेंट पुलिस भी रहे। फिर उन्नाव में डिप्टी कमिश्नर (कलेक्टर) रह कर पेंशन ली और ओर्छा में दीवान रहे। अब शांति के लिये चले आए हैं।

सं० १९५६ से इन्होंने हिंदी की सेवा प्रारंभ की और तब से अब तक बराबर हिंदी का उपकार करते आए हैं। विश्व-विद्यालयों (प्रयाग, लखनऊ आदि) एवं इंटर बोर्ड में हिंदी को स्थान दिलाने में आपने स्तुत्य प्रयत्न किया है। आप सं० १९६६ से १९७७ तक नागरी-प्रचारिणी सभा के खोज-विभाग के प्रधान निरीक्षक एवं सभापति रहे। रायल एशियाटिक सोसा-इटी, प्रयाग-विश्वविद्यालय के कोर्ट, हिंदुस्तानी एकाडेमी आदि अनेक संस्थाओं के मेंबर हैं।

आपने कई स्तुत्य ग्रथ लिखे जिनमें से मिश्रबंधुविनोद ४ भाग हिंदी साहित्य का इतिहास), हिंदीनवरत्न, भारतवर्ष का इतिहास २ भाग, नवोन्मीलन (नाटक), पूर्व भारत (नाटक), बूँदीवारीश (काव्य), जापान और रूस का इतिहास आदि लिखे हैं।

इनकी भाषा सरल, सुबोध, स्पष्ट और प्रौढ़ रहती है। शैली रोचक, भावपूर्ण और पदावलीपूर्ण है।

पंडित रामचंद्र शुक्ल—जन्म-सवत् १९४१

(मित्रता)

आपका जन्म आश्विन की पूर्णिमा को, बस्ती ज़िला के अगोना गाँव में हुआ। इन्होंने एफ० ए० तक कालिज मे शिक्षा पाई। बाल्यकाल मे संस्कृत की भी शिक्षा पाई थी। सन् १९०६ में इन्होंने क़ानून की भी परीक्षा दी थी, पर विफल रहे। इस बीच ये मिर्ज़ापुर मिशन स्कूल में मास्टर हो गए थे। १९०८ में ये नागरी-प्रचारिणी सभा में हिंदीशब्दसागर के सहकारी सपादक के रूप मे बुलाए गए। आठ नौ वर्ष तक इन्होंने नागरी-प्रचारिणी पत्रिका का सपादन किया। आजकल आप काशी-विश्वविद्यालय में हिंदी के अध्यापक हैं। आप कवि और गद्य-लेखक दोनों हैं। आपकी कविताएँ अत्यत भावपूर्ण होती हैं। फुटकर कविताओं के अतिरिक्त आपने बुद्धचरित नामक एक महाकाव्य लिखा है। आपके निबंधों में बड़े गूढ भाव भरे रहते हैं, इससे वे जटिल और दुरूह होते हैं। इन्होंने अपने निबधो के लिये या तो साहित्यिक विषय चुने हैं, या मनोविकार। सूर, तुलसी और जायसी की मामिक और विस्तृत आलोचनाए भी इन्होंने लिखी हैं। इनकी समालोचनाओं ने हिदी के आलोचना-क्षेत्र में एक नए युग का सूत्रपात किया है।

कार्तिकप्रसाद—

(लक्ष्य)

ये हिंदी के पुराने लेखक हैं। इनके लेख प्रायः सरस्वती में प्रकाशित होते रहे हैं। बहुत दिनों तक इन्होंने भारत-जीवन पत्र का संपादन किया और अनेक बँगला-पुस्तकों का हिंदी में अनुवाद किया।

स्वामी सत्यदेव—

(शिकागो का रविवार)

ये एक संन्यासी और परिव्राजक हैं। इन्होंने अमेरिका, जर्मनी आदि अनेक देशों में पर्यटन किया है। इनके विचार उन्नत और उदार हैं। इन्होंने हिंदी में यात्रा-संबंधी कई पुस्तकें लिखीं। इस अंश की इनके द्वारा अच्छी पूर्ति हुई है। अमेरिका-दिग्दर्शन, कैलास-यात्रा, मेरी जर्मन यात्रा, आश्चर्यजनक घटी इनकी पुस्तकों में से अधिक रोचक और अवलोकनीय हैं।

पं० हरिमंगल मिश्र, एम० ए०—

(सच्ची मित्रता)

आप हिंदी के बड़े पुराने लेखक थे। गत वर्ष आपका देहांत काशी में हो गया। आप पहले प्रयाग के नार्मल स्कूल में द्वितीय अध्यापक थे, फिर बनारस के क्वींसकालेज में हिंदी के अध्यापक हुए। आपने भारत का प्राचीन इतिहास बड़ी योग्यता के साथ लिखा है। आप व्रजभाषा में कविता भी करते थे। आपकी भाषा सरल और सुबोध है, साथ ही उसमें कुछ पुरानापन भी मिलता है।

पं० चंद्रमौलि शुक्ल एम० ए०, न० टी०—

(जापान की ाचा-प्रणाली)

आप कान्यकुब्जवंशीय शुक्ल हैं। इस समय आप ट्रेनिंग कालेज बनारस मे वाइस ।ासपल हैं। आप अँगरेज़ी, सस्कृत और ।हदी के विद्वान् हैं। आपने कई पुस्तकें लिखी हैं। हिंदी की सेवा आप बहुत दिनो से कर रहे हैं। आपकी भाषा प्रौढ़, परिमाजित और भावपूर्ण होती है।

रा० व० लज्जाशकर झा, एम० ए०, एल० टी०—

(जीवन-संग्राम और छोटे प्राणी)

आप अँगरेज़ी और हिंदी के पडित हैं। इस समय आप काशी-विश्वविद्यालय के ट्रेनिग कालेज में प्रिंसिपल हैं। आपने कई सुदर पुस्तकें लिखी हैं उनमें से "शिक्षण-पद्धति" अवलोकनीय है। आप भी हिंदी-प्रेमी और साहित्यसेवी हैं। आपकी भापा प्रौढ और शुद्ध होती है; और शैली' सुरुचिपूर्ण तथा स्पष्ट रहती है।

पं० कामताप्रसाद गुरु—जन्म-सं० १९३२

(सभाषण में शिष्टाचार)

आप जबलपुर-निवासी कान्यकुब्ज ब्राह्मण हैं। आप खड़ी बोली के कवि और लेखक हैं। आपने ।हदी का एक बड़ा व्याकरण बड़ी योग्यता से लिखा है। आपकी रचनाएँ सरस्वती आदि मासिक पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रहती हैं। आपकी भाषा परिमार्जित, परिपक्व और भाव-पूर्ण होती है। शब्दावली शुद्ध, सुव्यवस्थित और सरस ोती है। आपकी "हिंदुस्तानी शिष्टा-चार' नामक पुस्तक अवलोकनीय है।

सूरदास—

(सूर-सुधा)

सूरदास का जन्म-संवत् १५४० के लगभग मथुरा और आगरे के बीच रुनकता गाँव में हुआ था। यह भी हाल में पता लगा है कि ये चंद बरदाई के वंशधर थे। इनके पिता का नाम हरीचंद था। इनके छः भाई मुसलमानों के साथ युद्ध में मारे गए। केवल यही शेष रहे। कारण यह था कि ये अंधे थे और युद्ध में नहीं जा सकते थे। ये बहुत दिनों तक निराश्रय फिरते रहे। एक बार कुएँ में गिर पड़े, छः दिन तक वहीं पड़े रहे। आख़िर निस्सहायों के सहायक भगवान् ने कृष्णरूप में इन्हें दर्शन दिए और कुएँ से बाहर निकाला। उस समय इनकी दृष्टि भी खुल गई। सूरदास ने वर माँगा कि जिस दृष्टि से आपको देखा है उससे साधारण चीज़ें न देखनी पड़ें और सदा आपका ध्यान हृदय में रहे। इसी से सूरदास फिर अंधे हो गए। अपने प्रभु की लीला-भूमि में इन्होंने आश्रम बनाया। ये बड़े भक्त कवि हुए। ये सवा लाख पदों के रचयिता प्रसिद्ध हैं। पर अभी तक, मुश्किल से, इनके छः हज़ार पद मिलते हैं जो 'सूरसागर' में संगृहीत हैं। गोसाईं विट्ठलनाथ जी ने इन्हें सबसे बड़े आठ कृष्ण-भक्त कवियों में, जो अष्ट-छाप में गिने जाते हैं, सबसे पहला स्थान दिया।

गोस्वामी तुलसीदास—

(शिव-बरात, सतसई-सुमन)

गोसाईं जी की शिष्य-परंपरा में उनका जन्म संवत् १५५४ माना जाता है। शिवसिंह सेंगर ने १५८३ में इनका जन्म होना लिखा है। ये राजापुर के पं० आत्माराम के पुत्र थे। इनकी माता का नाम हुलसी था। वेणीमाधवदास के मूल गोसाईंचरित में लिखा है कि इनके पेट ही से दाँत उग आए थे और इनको जन्म

देकर इनकी माता मर गई थी। एक दासी ने पाँच वर्ष तक इनका पालन किया। साँप काटने से वह भी मर गई। कुलक्षण समझ कर इनके पिता ने इन्हें त्याग दिया। तब नरहर्यानंद जी ने इनको पाला-पोसा और इनके सब संस्कार किए। इन्हीं ने इनका नाम तुलसीदास रखा। इनका पहला नाम रामबोला था। शेषसनातन जी के पास काशी में इन्होंने विद्या प्राप्त की। आगे चलकर इनका विवाह भी हुआ। एक बार ये अत्यंत प्रेम के कारण अपनी स्त्री के पीछे पीछे अपनी ससुराल को दौड़े गए। इस पर इनकी स्त्री ने इन्हें फटकारा जिससे इन्हें वैराग्य हो गया। इन्होंने सारे भारत का भ्रमण किया और गीतावली तथा रामचरितमानस सरीखे कई अनुपम ग्रंथ लिखे। इनकी मृत्यु काशी में सं० १६८० में हुई।

केशवदास- ज०-सं० १६१२, मृ०-सं० १६७४

(रावण और अंगद)

ये सनाढ्यकुल के पं० काशीनाथ के सुपुत्र एवं ओरछा-नरेश श्री रामसिंह के भाई श्री इंद्रजीतसिंह के प्रिय मित्र थे। महाराज बीरबल ने इनके एक छंद पर प्रसन्न होकर इन्हें ६ लाख रुपए पुरस्कार में दिए। इन्हीं के कहने से उन्होंने ओर्छा-नरेश का जुरमाना भी मुआफ़ करा दिया।

आपका समस्त वंश संस्कृतज्ञ और विद्वान् था, आप भी संस्कृत के प्रगाढ़ पंडित थे। भाषा पर आपका पूरा अधिकार था, काव्यशास्त्र एवं पिंगल के आप आचार्य ही थे। आपका काव्य क्लिष्ट और उत्कृष्ट है, उस पर संस्कृत का प्रभाव है, उससे इनका पांडित्य और आचार्यत्व स्पष्टरूप में झलकता है। आपकी भाषा परिष्कृत, प्रौढ़ और गूढ़ है। पदावली भावगम्य, दुरूह और कुछ जटिल-सी है।

आपने कई स्तुत्य ग्रंथ लिखे जिनमें से रामचंद्रिका (रामकाव्य), रसिकप्रिया कविप्रिया (काव्यशास्त्र के ग्रंथ) विशेष प्रसिद्ध और उल्लेखनीय हैं।

आपके काव्य में सत्काव्य के सभी गुण पाए जाते हैं। विविध छंदात्मक शैली से रचना में इनकी जैसी सफलता और किसी भी कवि को नहीं मिली। इनकी वर्णन-शैली राजसी ठाट-बाट की, विशद और चुटीली है।

इनका स्थान साहित्याकाश में सूर और तुलसी के पश्चात् तारक के समान तृतीय माना गया है। आचार्यत्व में तो इनका स्थान सर्वोच्च ही है।

कबीर—

(कबीर-वाणी)

कबीर का जन्म मगहर ज़िला बस्ती में हुआ था। कब? इसका निश्चय नहीं। कोई संवत् १४५६ में मानते हैं और कोई संवत् १४९७ में। कबीर जाति का मुसलमान जुलाहा था। उसके पिता का नाम नूरुद्दीन और माता का नीमा कहा जाता है। जब इसकी अवस्था थोड़ी थी, इसका पिता परिवार-सहित काशी चला आया कुछ लोग उसका जन्म लहरतारा, काशी में ही मानते हैं। वहाँ वह साधुओं के सत्संग में रहने लगा। अपनी सारी रहन-सहन उसने हिन्दुओं की ऐसी कर ली। उसके हृदय में वैराग्य जग गया था। उसकी जिज्ञासा बहुत बढ़ने लगी। स्वामी रामानंद जी उन दिनों काशी में थे। कबीर ने उन्हें अपना गुरु बनाया। उसने सूफियों का भी सत्संग किया था। उसने अपना अलग पंथ चलाया जिसमें वेदांत और सूफी मत के आधार पर सबकी एकता सिद्ध की गई थी। यही कबीरपंथ कहलाया। कबीर की रचनाएँ बीजक ग्रंथ में संग्रहीत हैं। बीजक में तीन

प्रधान खंड हैं—साखी सबद और रमैणी। हिन्दू-मुसलमान दोनों ने कबीर की शिक्षाएँ ग्रहण कीं और दोनों ही के पुरोहितों ने उसका विरोध किया। सिकंदर लोदी के पास जब फ़र्याद पहुँची तो उसने इसे काशी से निकलवा दिया। फिर यह मगहर चला गया और वहीं सं० १५७५ में इसकी मृत्यु हुई।

अब्दुर्रहीम ख़ानख़ाना 'रहीम'—

(रहीम-रचना)

इनका जन्म सं० १६१० में हुआ था। ये अकबर के अभिभावक ख़ानख़ाना के पुत्र थे। ये बड़े कवि और दानी थे। गंग कवि को इन्होंने एक बार छत्तीस लाख रुपए का पुरस्कार दिया था। इन्होंने संस्कृत, हिंदी और फ़ारसी सभी भाषाओं में अच्छी कविता की है। इनके दोहे और बरवै प्रसिद्ध हैं। बरवै छंद में इन्होंने नायिका-भेद भी लिखा है। इनकी गोसाईं तुलसीदास जी से बड़ी घनिष्ठता थी। ये अकबरी दरबार के रत्न थे। ये उसके सेनापति और मंत्री थे। पीछे ये जहाँगीर के विरुद्ध हो गए थे। इससे ये क़ैद कर लिए गए और इनकी जागीर छीन ली गई। पर फिर इन्हें क्षमा मिल गई। सं० १६९६ में ये विद्रोही महाबतख़ाँ के विरुद्ध भेजे गए। परंतु मार्ग ही में, दिल्ली में, इनका स्वर्गवास हो गया।

जगन्नाथदास 'रत्नाकर'—

(गंगावतरण)

बाबू जगन्नाथदास का जन्म सं० १९२३ में, काशी में, हुआ। इनके पिता बाबू पुरुषोत्तमदास अग्रवाल थे। इनके पूर्वज मुग़ल बादशाहों के यहाँ प्रतिष्ठित पदों पर रहते थे। अतएव इनके घर में फ़ारसी का बड़ा मान था। जगन्नाथदास जी ने भी बी० ए०

में फ़ारसी ली थी और फ़ारसी ही लेकर एम० ए० करना चाहते थे पर किसी कारण से परीक्षा न दे सके। पहले-पहल ये फ़ारसी में कविता किया करते थे। परंतु उस समय के हिंदी-प्रेम की लहर से नागरी-प्रचारिणी सभा जिसका प्रतीक है, ये नहीं बच सके और इन्होंने भी हिंदी में कविता रचना आरंभ कर दिया। इनकी कविता पुरानी पद्धति पर चलती हुई भी अत्यंत ओजपूर्ण होती थी। पढ़ने पर यही भान होता है कि पद्माकर या देव की कविता है। ये अपने समय में व्रजभाषा के सर्वोत्तम कवि थे। इनके 'हरिश्चंद्र' और 'गंगावतरण' काव्य बहुत प्रसिद्ध हैं। गंगावतरण पर इन्हें हिंदुस्तानी एकेडेमी से ५००) का पुरस्कार मिला है। ये अयोध्यानरेश महाराज सर प्रतापनारायणसिंह के प्राइवेट सेक्रेटरी थे। उनकी मृत्यु पर उनकी महारानी साहबा ने इन्हें अपना प्राइवेट सेक्रेटरी बनाया। अब तक ये उसी पद पर थे। अभी हाल ही में आप स्वर्गवासी हो गए हैं।

पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'—

(काली-दमन)

पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय अगस्त्य-गोत्री, शुक्ल यजुर्वेदी सनाढ्य ब्राह्मण हैं। इनका जन्म सं० १९२२ में आज़मगढ़ ज़िले के क़सबा निज़ामाबाद में हुआ। इन्होंने सं० १९३६ में वर्नाक्यूलर मिडिल परीक्षा पास की और सं० १९४४ में नार्मल पास किया। इन्हें संस्कृत और फारसी की भी शिक्षा मिली थी। पहले ये अपने ही क़सबे के तहसीली स्कूल में अध्यापक हुए। पीछे इन्होंने क़ानूनगोई पास की और क़ानूनगो बनाए गए। पेंशन लेते समय ये सदर क़ानूनगो थे। आजकल काशी-विश्वविद्यालय में हिंदी के अवैतनिक अध्यापक हैं। कविता के क्षेत्र में उपाध्याय जी का स्थान बहुत ऊँचा है। आपका 'प्रियप्रवास' एक अत्यंत सुंदर

महाकाव्य है जिसमें प्रेम की मधुर व्यजना के साथ साथ समाज-सेवा का ऊँचा आदश दिखाया गया है। प्रियप्रवास में मधुर और कोमल सस्कृत पदावली का उपयोग किया गया है। उपाध्याय जी ने बोलचाल की भाषा में भी बड़ी चुटीली उक्तियाँ कही हैं। इन पिछली रचनाओं में उन्होंने मुहावरों और कहावतों का बड़ा फबता प्रयोग किया है। इन रचनाओं का 'चोखे चौपदे', 'चुभते चौपदे' और 'बोलचाल' इन तीन ग्रन्थों में सग्रह किया गया है। इसी तरह उपाध्याय जी के गद्य-लेखों में भी दो शैलियाँ मिलती हैं।

बाबू मैथिलीशरण गुप्त—

(मातृ-भूमि)

इनका जन्म बाबू रामचरण गुप्त के यहाँ सं० १९४३ में, चिरगाँव झाँसी में, हुआ। ये शुद्ध खड़ी बोली में कविता करते हैं। व्याकरण के नियमों का कहीं भी उल्लघन नहीं करते। यह गुण प० महावीरप्रसाद जी द्विवेदी का शिष्यत्व प्रदर्शित करता है। इनकी कविताओं में उत्कट देश-प्रेम भरा रहता है जो इस युग की विशेषता है इसी लिये ये इस युग के प्रतिनिधि कवि कहे जाते हैं। बहुधा नवयुवक कवि गुप्त जी को ही आदर्श मानकर चलते हैं। भारत भारती उनकी सर्व-प्रिय रचना हुई है; पर उनका कवित्व उत्तरोत्तर स्फुटित हो रहा है झकार पचवटी आदि कई ग्रथ उनके बड़े सुदर हुए हैं। इन्होंने तिलोत्तमा और चद्रहास दो नाटक भी लिखे हैं विरहिणी व्रजांगना मेघनाद वध, प्लासी का युद्ध इन बंगला-ग्रथों का अनुवाद भी किया है। इनका साकेत महाकाव्य भी अच्छा है। इन्होंने अपने गाँव में साहित्य-प्रेस खोला है। इनका सारा समय साहित्य-सेवा में व्यतीत होता है—यही इनका व्यवसाय है।
